I.S.S.N. 0971-9024

अर्हत् वचन

ARHAT VACANA

वर्ष - 13, अंक - 2 अप्रैल - जून 2001

Vol.-13, Issue-2 April-June 2001

भगवान महावीर 2600 वाँ जन्मजयंती वर्ष विशेषांक

विश्ववंद्य तीर्थंकर महावीर के चरणों में शतश: नमन

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

KUNDAKUNDA JNANAPITHA, INDORE

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ गतिविधियाँ

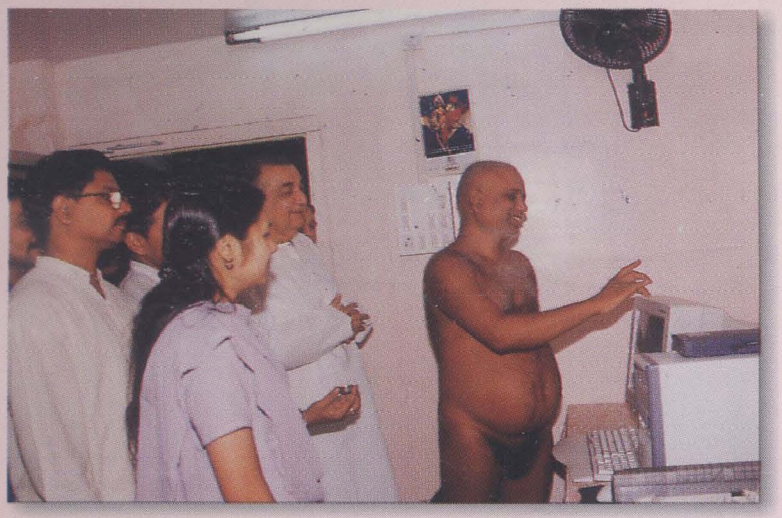

ज्ञानपीठ के नवीन कम्प्यूटर के शुभारम्भ अवसर पर स्वस्तिक बनाकर शुभाशीर्वाद देते हुए उपाध्याय मुनिश्री निजानन्दसागरजी। समीप हैं संस्था के कोषाध्यक्ष श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल, कु. संध्या जैन एवं डॉ. अनुपम जैन (सचिव)

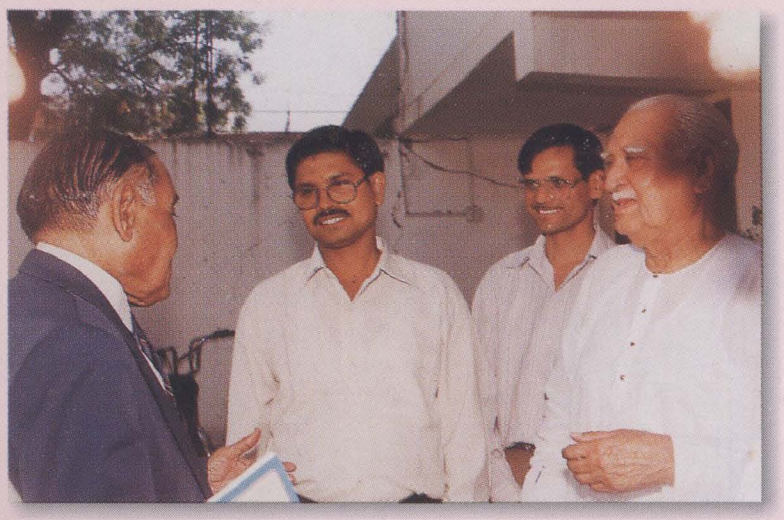

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों के बारे में सचिव डॉ. अनुपम जैन से चर्चारत श्री दीपचन्द गार्डी (बायें)। समीप हैं डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' एवं श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल (संस्थाध्यक्ष)

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के नवीन प्रकाशन 'म.प्र. का जैन शिल्प' का न्यायमूर्ति श्री एन. के. जैन एवं प्रो. नरेन्द्र धाकड़ से विमोचन कराते श्री अरविन्दकुमार जैन। समीप खड़े हैं ज्ञानपीठ के निदेशक प्रो. अब्बासी एवं कृति के लेखक श्री नरेश पाठक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

I.S.S.N. - 0971-9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 13, अंक 2 — अप्रैल - जून 2001
Volume 13, Issue 2 — April - June 2001

भगवान महावीर 2600 वाँ जन्मजयंती वर्ष विशेषांक

मानद - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 017
☎ 0731 - 787790

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College,
INDORE - 452017 INDIA
E.mail : Kundkund@sancharnet.in

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapīṭha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452001 (M.P.) INDIA
☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादक मंडल / Editorial Board

2001 - 2002

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य
जबलपुर - 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor - Mathematics & Principal
Jabalpur - 482 002

प्रो. राधाचरण गुप्त
सम्पादक - गणित भारती,
झांसी - 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Editor - Ganita Bharati,
Jhansi - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल
रसायन भौतिकी समूह,
स्टिलवाटर OK 74078 USA

Prof. Parasmal Agrawal
Chemical Physics Group, Dept. of Chemistry
Stillwater OK 74078 USA

डॉ. तकाओ हायाशी
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
क्योटो - 610 - 03 जापान

Dr. Takao Hayashi
Science & Tech. Research Inst.,
Kyoto - 610 - 03 Japan

श्री सूरजमल बोबरा
इन्दौर - 452 003

Shri Surajmal Bobra
Indore - 452 003

डॉ. महेन्द्रकुमार जैन
इन्दौर - 452 001

Dr. Mahendra Kumar Jain
Indore - 452 001

सम्पादकीय पत्राचार का पता

डॉ. अनुपम जैन
'ज्ञान छाया',
डी - 14, सुदामा नगर,
इन्दौर - 452 009

Dr. Anupam Jain
'Gyan Chhaya',
D - 14, Sudama Nagar,
Indore - 452 009

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 125=00	रु./Rs. 250=00	U.S. $ 25=00
10 वर्ष हेतु / 10 Years	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द फाईलों में रु. 500.00/ U.S. $ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं।

सदस्यता एवं विज्ञापन शुल्क के म.आ./चेक / ड्राफ्ट **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर** के नाम देय ही प्रेषित करें। इन्दौर के बाहर के चेक के साथ कलेक्शन चार्ज रु. 25/- अतिरिक्त जोड़कर भेजें।

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें। साथ ही सम्बद्ध अंक की एक प्रति भी हमें प्रेषित करें। समस्त विवादों का निपटारा इन्दौर न्यायालयीन क्षेत्र में ही होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल - जून 2001

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ 5
☐ डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

प्रकाशकीय अनुरोध 7
☐ देवकुमारसिंह कासलीवाल, इन्दौर

लेख / **ARTICLE**

भगवान महावीर की जन्मभूमि - कुण्डलपुर 9
☐ आर्यिका चन्दनामती

तीर्थंकर महावीर पर आधारित प्रबन्ध काव्य 17
☐ कु. रश्मि जैन, बीना

बौद्ध साहित्य के निगण्ठ नातपुत्त - तीर्थंकर महावीर 27
☐ डॉ. रमाकान्त जैन, लखनऊ

वर्द्धमान चरितम, वर्धमानस्वामिचरित्तम् 29
☐ डॉ. संगीता मेहता, इन्दौर

भगवान शिव एवं विष्णु के अवतार - ऋषभदेव : एक चिन्तन 35
☐ डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, अमलाई

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती और द्रव्यसंग्रहकार मुनि नेमिचन्द्र की भिन्नता 39
☐ डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

क्या औरंगजेब की नीतियाँ हिन्दू विरोधी थीं? 45
☐ डॉ. अनिलकुमार जैन, अहमदाबाद

रइधू रचित पोथी चित्र में जैन चित्रकला 51
☐ डॉ. जया जैन, ग्वालियर

Searching for Jaina Identity in North America 57
☐ Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar, Canada

Conflict Resolution through Non-violence in Action - The Jaina Approach 63
☐ Dr. N. P. Jain, Indore

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पणियां / **SHORT NOTES**

स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म का संधान 71

□ जतनलाल रामपुरिया, कलकत्ता

आशीर्वाद संगीत और प्रार्थना का प्रभाव 75

□ सुल्तानसिंह जैन, रूढ़की

पुस्तक समीक्षा

म.प्र. का जैन शिल्प द्वारा श्री नरेशकुमार पाठक 77

□ सूरजमल बोबरा, इन्दौर

आख्या / **REPORTS**

भट्टारक यशकीर्ति हस्तलिखित शास्त्र भंडार, सर्वेक्षण आख्या 79

□ डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज', इन्दौर

जैन विद्या संगोष्ठी, इन्दौर, 3 - 5 मार्च 2001 83

□ डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

भगवान ऋषभदेव जयन्ती एवं संगोष्ठी, आगरा, 18 - 19 मार्च, 2001 91

□ राजीव जैन, आगरा

प्रतिक्रियायें 93

मत - अभिमत 101

गतिविधियाँ 103

अगले अंक में

1.	**Kundalpur's Past Three Centuries**	Yeshwant K. Malaiya, Colorodo U.S.A.
2.	जैन दर्शन में आस्रव तत्त्व का निरूपण	डॉ. मुकुलराज मेहता, वाराणसी
3.	तीर्थंकर महावीर : एक जीवन शैली	(कु.) रश्मि जैन, बीना
4.	वास्तु कला एवं पाषाण प्रतिमायें	डॉ. कमल जैन, ब्यावर
5.	डॉ. नेमीचन्द जैन सन्दर्भ साहित्य : एक दृष्टि	डॉ. प्रकाशचन्द जैन, इन्दौर
6.	आगमिक सन्दर्भों के शिल्पी : वैज्ञानिक इतिहासकार यतिवृषभ	सूरजमल बोबरा, इन्दौर
7.	द्वादशांग श्रुत और उसकी परम्परा	आचार्य राजकुमार जैन, दिल्ली
8.	जैन साहित्य सूचीकरण - अपरिहार्यता, समस्यायें एवं समाधान	डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर
9.	दो महान गणितज्ञ - श्रीधर और महावीर	डॉ. अनुपम जैन, प्रशान्त तिलवनकर एवं ममता अग्रवाल, मेरठ
12.	जैन धर्म, ऋषभदेव एवं महावीर विषयक आदर्श पाठ	डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामयिक सन्दर्भ

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी महोत्सव वर्ष 1987-88 में प्रारम्भ अर्हत् वचन का 50 वाँ अंक (वर्ष-13, अंक-2) भगवान महावीर जन्म जयंती महोत्सव वर्ष (2001-2002) में आपके हाथों में प्रस्तुत है। जैन विज्ञान एवं जैन इतिहास/पुरातत्त्व को केन्द्र बिन्दु बनाकर प्रस्तुत की गई इस शोध पत्रिका ने इन 50 अंकों में 5000 पृष्ठों की बहुमूल्य सामग्री अपने सुधी पाठकों को प्रस्तुत की। इस विकास यात्रा में हम कितना आगे बढ़ पाये यह तो हम नहीं कह सकते किन्तु हमें देश के मूर्धन्य विद्वानों, शोधकों एवं जिज्ञासु पाठकों का पर्याप्त स्नेह मिला है। वस्तुतः पत्रिका ने जो भी ख्याति अर्जित की है उसका सम्पूर्ण श्रेय हमारे लेखकों तथा सम्पादक मण्डल के सदस्यों को है एवं जो न्यूनतायें रह गई उसका कारण मेरी अल्पज्ञता एवं प्रमाद है। फलतः मैं इसका सम्पूर्ण दायित्व स्वीकार करता हूँ एवं भविष्य में अपेक्षित सुधार का विश्वास दिलाता हूँ। गणित का विद्यार्थी होने के कारण भाषा एवं व्याकरण संबंधी अनेक दोष रह जाते हैं तथा प्रूफ संशोधन में भी दोष रह जाते हैं जिनका परिष्कार किया जाना जरूरी है। इन 50 अंकों में प्रकाशित लेखों, टिप्पणियों, आख्याओं आदि की समेकित सूची शीघ्र प्रकाशित की जा रही है जो हमारे पाठकों हेतु तो उपयोगी होगी किन्तु विगत वर्षों में प्रकाशित सामग्री की समृद्धता को भी व्यक्त करेगी।

गत अंक में प्रकाशित मेरे सम्पादकीय तथा गत संगोष्ठी (3-5 मार्च 2001) में आयोजित एक सत्र पर व्यापक प्रतिक्रिया हुई। अनेक विद्वानों ने विस्तृत एवं कुछ ने संक्षिप्त प्रतिक्रियायें भेजीं। यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के विषय में चिन्ता की कोई बात नहीं है। विद्वानों की चिन्तायें उनके स्नेह का प्रतीक है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ उसके यशस्वी अध्यक्ष काकासाहब **श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल** का स्वप्न है जिसे साकार करने में आप सब प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहभागी बने हैं। उनकी कल्पनाशीलता, स्थिरबुद्धि, दूरदृष्टि, समर्पण के भाव, सुविचारित योजनाबद्ध क्रियान्वयन एवं विश्वास का प्रतिफल है यह शोध संस्थान। यह मेरा सौभाग्य रहा कि मैं उनके मिशन में अपना यत्किंचित योगदान कर सका एवं जब तक उनका विश्वास बना रहेगा मैं अपना न्यूनाधिक योगदान देता रहूँगा। किसी शोध पत्रिका के 50 अंक नियमित निकलना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। विगत 13 वर्षों में ज्ञानपीठ के विविध प्रकल्पों की स्थापना एवं संचालन में 1,00,00,000/- (एक करोड़) रूपये से अधिक की राशि का निवेश/व्यय किया जा चुका है फलतः संस्थान ने राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की है। यह इस संस्था के नेतृत्व के लिये अत्यन्त गौरव एवं संतोष का विषय है।

नई परिस्थिति में उतने कठोर श्रम की अपेक्षा नहीं जितनी प्रारम्भिक वर्षों में थी। क्योंकि प्रारम्भ के वर्षों में अधिकांश वर्गों में संस्था के प्रति उपेक्षा का भाव रहता है फलतः संचालक/संचालकों को केवल कठोर श्रम करना होता है जिससे उनकी संस्था की पहचान बन सके किन्तु विकसित हो जाने या पहचान बन जाने के बाद गैर अकादमिक व्यक्ति वर्चस्व बढ़ाने लगते हैं अथवा अकादमिक व्यक्ति 'चलती गाड़ी में बैठने' की नीति के तहत अधिकार जमाने की फिराक में जुट जाते हैं। ज्ञानपीठ सहित समस्त शोध संस्थानों के शीर्ष नेतृत्व को ऐसे शुभचिन्तकों (?) से अपने संस्थानों को बचाना होगा वरना हींग की एक डली लहलहाते बट वृक्ष को भी कुछ समय में धराशायी कर देती है। व्यक्ति या व्यक्तियों की सुषुप्त/अतृप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महत्वाकांक्षायें संस्थान को राजनीति का अखाड़ा बना देती हैं। ऐसे व्यक्ति थोड़ा सा लाभ देकर भी संस्थान का इतना नुक्सान कर देते हैं जिसकी भरपाई असंभव हो जाती है। ऐसा पोषण किस काम का जिसकी चरम परिणति प्राणों का विसर्जन हो। जैन समाज के अनेक प्रतिष्ठित शोध संस्थानों का विगत 50 वर्षों का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। हम कामना करते हैं कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ सहित देश के सभी जैन संस्थान ऐसे तथाकथित शुभचिन्तकों की कुदृष्टि से बचे रहें। और जैन विधाओं के अध्ययन /अनुसंधान की क्षीण होती परम्परा लुप्त होने से बच जाये। स्वप्न देखना या दिखाना बुरा नहीं किन्तु वर्तमान की कीमत पर, शायद श्रेयस्कर नहीं।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का पुस्तकालय आज शोधार्थियों के आकर्षण का केन्द्र बनता जा रहा है। अब तक इसमें लगभग 9000 से अधिक पुस्तकों, 1100 से अधिक पांडुलिपियों (सहयोगी अमर ग्रंथालय में संकलित पांडुलिपियों सहित) एवं 500 से अधिक प्रकार की जैन एवं जैनेतर पत्र-पत्रिकाओं का संकलन किया जा चुका है। आज भी 300 जैन पत्र-पत्रिकायें नियमित रूप से आ रही हैं। पुस्तकालय को वर्तमान रूप में लाने के लिये हमें विगत वर्षों में श्री सनतकुमार जैन, श्रीमती जाग्रति बक्षी एवं श्रीमती सुरेखा मिश्रा, B.Lib. का भरपूर सहयोग मिला। सम्प्रति श्रीमती मिश्रा एवं कु. संध्या जैन कार्यरत हैं। पुस्तकालय विज्ञान के युवा विद्वान डॉ. संजीव सराफ M.Lib., D.Lib. ने अनथक श्रम किया है। उन्होंने दाशमिक पद्धत्ति से इस पुस्तकालय का वर्गीकरण कराया है।

पुस्तकालय की स्थापना काकासाहब के व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध जैन संस्कृति संरक्षक संघ-शोलापुर एवं भारतीय ज्ञानपीठ के प्रकाशनों से हुई थी। तदुपरान्त डॉ. वृद्धिचन्द्र जैन के परिवार, डॉ. एन. पी. जैन (पूर्व राजदूत), श्री जयसेन जैन (सम्पादक-सन्मति वाणी), श्री रमेश कासलीवाल (सम्पादक-वीर निकलंक), डॉ. एम. के. जैन, ब्र. भाई अनिलजी, ब्र. भाई सुनीलजी ने अपने संग्रह की शताधिक पुस्तकें प्रदान की। दि. जैन उदासीन आश्रम के संग्रह एवं आदरणीय बाबूसाहब श्री अजितकुमारसिंह कासलीवालजी से हमें बहुत बड़ी मात्रा में मूल्यवान ग्रंथ प्राप्त हुए। पूज्य मुनि श्री अभयसागरजी के आशीर्वाद सहित अनेक ग्रंथ, आचार्य श्री विद्यासागरजी के संघ से भी अनेक ग्रंथ मिलते रहते हैं। मैंने स्वयं भी शताधिक ग्रंथ विभिन्न चरणों में पुस्तकालय को प्रदान किये। आप सबके सहयोग एवं विश्वास के लिये हम कृतज्ञ हैं। यह हमारा कर्तव्य है कि इस विश्वास को अक्षुण्ण बनाये रखें। देश के कोने कोने से अर्हत् वचन में समीक्षार्थ एवं पुस्तकालय हेतु भेंट में प्राप्त होने वाले ग्रंथ भी इसका गौरव बढ़ाते हैं। भविष्य में भी सभी पाठकों को सभी ग्रंथ उपलब्ध करना हमारा दायित्व है।

अर्हत् वचन का प्रस्तुत अंक हमने भगवान महावीर 2600 वाँ जन्म जयन्ती वर्ष विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया है। फलतः भगवान महावीर से सम्बद्ध 4 आलेखों को विशेष रूप से प्रकाशित किया है। आगे भी भगवान महावीर विषयक सामग्री प्राथमिकता से प्रकाशित करेंगे। पत्रिका की पारम्परिक रीति-नीति के अनुरूप अन्य आलेख भी संयोजित हैं। अगले अंक में प्रकाश्य कुछ आलेखों को भी सूचीबद्ध किया है।

अन्त में मैं दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के सभी पदाधिकारियों विशेषतः श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल एवं श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके संरक्षण के कारण ही पत्रिका का 50 वाँ अंक हम प्रस्तुत कर पा रहे हैं। इन 50 अंकों के सम्पादन के मध्य हुई त्रुटियों के लिये क्षमायाचना सहित .....

डॉ. अनुपम जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्रकाशकीय अनुरोध

अर्हत् वचन पत्रिका का 50 वाँ अंक सुयोग से महावीर जयंती के पावन अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। किसी भी शोध पत्रिका का 50 वाँ अंक नियमित प्रकाशन होना वैसे ही आल्हादकारी होता है फिर इसका भगवान महावीर की 2600 वीं जन्म जयंती के अवसर पर प्रकाशित होना और भी सुखद है। अपने सुधी पाठकों एवं समर्पित लेखकों का सम्बल पाकर ही हम इस मंजिल तक पहुँचे हैं। फलतः इस अवसर पर हम आप सबको बधाई देते हैं।

भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव के उपरान्त 2600 वाँ जन्म जयंती महोत्सव वर्ष के रूप में पुनः अवसर आया है जब हमें जैनधर्म की प्राचीनता, प्रासंगिकता, समीचीनता एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जैनाचार्यों के अवदान को विश्व समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत करना है। निर्वाणोत्सव के समय भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा जैनकला एवं स्थापत्य - 3 भाग, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी द्वारा भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ - 5 भाग, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद द्वारा तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा - 4 भाग सदृश्य कालजयी कृतियाँ विश्व समुदाय के सम्मुख आई हैं।

भगवान महावीर के 2600 वें जन्म जयंती वर्ष के सन्दर्भ में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर ने एक अतिमहत्वपूर्ण प्रकल्प हस्तगत किया है। 9वीं शताब्दी के दिगम्बर जैन आचार्य श्री कुमुदेन्दु ने अंकलिपि में सर्वभाषाभयी ग्रंथ 'सिरिभूवलय' की रचना की थी। अंकलिपि एवं कानड़ी अक्षर लिपि में समन्वित रूप से लिखे इस ग्रंथ में बने चार्टों में विविध बंधों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के अनेक प्रमुख/बहुश्रुत ग्रंथ गुंथित हैं। जिनको प्रकट करने से इन ग्रंथों के 9 वीं शताब्दी में प्रचलित वास्तविक पाठों को प्राप्त करना संभव होगा। कालक्रम से साम्प्रदायिक दुराग्रहों के कारण विकृत किये गये अंशों का ज्ञान होने से हम अपने सच्चे इतिहास एवं संस्कृति को भली प्रकार जान सकेंगे। साथ ही ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में जैनाचार्यों के योगदान को अधिक सक्षमता से प्रदर्शित किया जा सकेगा।

आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज द्वारा बीसवीं सदी के पाँचवें दशक में इस ग्रंथ का जो प्राथमिक अध्ययन कराया गया था उसके निष्कर्ष के आधार पर यह ग्रंथ धवला से भी अधिक परिष्कृत वैज्ञानिक एवं गणितीय ज्ञान से समृद्ध है। **डॉ. अनुपम जैन** के मार्गदर्शन में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने इस ग्रंथ की पांडुलिपियों एवं अब तक कृत कार्य की खोज, संकलन, लिप्यांतरण, अनुवाद एवं आलोचनात्मक अध्ययन की एक विशेष कार्य योजना तैयार की है। अर्हत् वचन के गत अंकों में इस विषय पर काफी लिखा जा चुका है। अब सम्पूर्ण योजना में समन्वय हेतु **डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'** को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में शोधाधिकारी (भूवलय परियोजना) के रूप में दायित्व दिया गया है। हमें विश्वास है कि हम इस दुर्लभ ग्रंथ को विद्वत् जगत के सम्मुख प्रस्तुत कर सकेंगे।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति महामहिम डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इस ग्रंथ को देखकर इसे भारत का 8 वाँ आश्चर्य निरूपित किया था एवं उनके आदेशानुसार ही इसे राष्ट्रीय अभिलेखागार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में माइक्रो फिल्म के माध्यम से संरक्षित किया गया था।

मैं आप सबसे अनुरोध करता हूँ कि इस महान यज्ञ में अपनी आहुति देने हेतु ज्ञानपीठ को सब प्रकार का सहयोग प्रदान करें। आपके पास एतद्विषयक जो भी सूचनाएँ हों वे भी हमें अविलम्ब उपलब्ध कराने का कष्ट करें। जिससे कार्य योजना के निर्माण में उसका उपयोग हो सके।

वर्ष 2001 तथा 2002 हेतु नये निदेशक मंडल एवं सम्पादक मंडल का गठन किया जा चुका है। इनकी पूर्ण सूची क्रमशः इसी पृष्ठ एवं पृष्ठ-2 पर दृष्टव्य है। डॉ. अनुपम जैन ने विगत 12 वर्षों की भांति भविष्य में भी अर्हत् वचन का सम्पादन कार्य करते रहते की स्वीकृति प्रदान की है। साथ ही निदेशक मंडल के अध्यक्ष के रूप में हमें बहुश्रुत शिक्षाविद् एवं देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर के पूर्वकुलपति प्रो. ए. ए. अब्बासी का मार्गदर्शन प्राप्त होगा जो हमारे लिये गौरव की बात है। मैं निदेशक एवं संपादक मंडल के सभी सदस्यों को बधाई देता हूँ एवं आशा करता हूँ कि आप सबके सहयोग से ज्ञानपीठ नवीन ऊँचाइयों को प्राप्त करेगा।

6.4.2001 **— देवकुमारसिंह कासलीवाल**

निदेशक मंडल – सन् 2001 – 2002

अध्यक्ष
प्रो. ए.ए. अब्बासी
पूर्व कुलपति,
बी - 417, सुदामा नगर,
इन्दौर – 452 009
फोन : 0731 – 482898

सचिव
डॉ. अनुपम जैन
स. प्राध्यापक - गणित,
शा. होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
'ज्ञान छाया', डी - 14, सुदामा नगर,
इन्दौर – 452 009
फोन : 0731 - (नि.) 787790 (का.) 545421

सदस्य

1. **प्रो. आर. र. नांदगांवकर**
पूर्व कुलपति,
चन्द्रदीप अपार्टमेन्ट, निकालस मन्दिर,
इतवारी,
नागपुर – 440 002
फोन : 0712 - 763186

2. **प्रो. नलिन के. शास्त्री**
समायोजक - महाविद्यालय विकास परिषद,
ए - 11, मगध वि.वि. परिसर,
बोधगया – 824 234 (बिहार)
फोन : 0631 - 400420

3. **प्रो. सुरेशचन्द अग्रवाल**
प्राध्यापक - गणित एवं अध्यक्ष - विज्ञान संकाय,
ए - 2, चौधरी चरणसिंह वि.वि.,
मेरठ – 250 404 (उ.प्र.)
फोन : 0121 – 762526

4. **डॉ. एन.पी. जैन**
पूर्व राजदूत,
ई - 50, साकेत,
इन्दौर – 452 001
फोन : 0731 - 561273

5. **डॉ. प्रकाशचन्द जैन**
91/1, गली नं. 3, तिलकनगर,
इन्दौर – 452 001
फोन : 0731 - 490619

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 9 - 16

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर

■ आर्यिका चन्दनामती*

इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की तीर्थंकर परम्परा में अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के 2600 वें जन्मजयंती महोत्सव के सन्दर्भ में प्राचीन जैन सिद्धान्त एवं पुराण ग्रन्थों के अनुसार महावीर स्वामी का शोधपूर्ण वास्तविक परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व श्री यतिवृषभाचार्य द्वारा रचित **'तिलोयपण्णत्ति'** ग्रन्थ में वर्णन आया है कि -

सिद्धत्थराय पियकारिणीहिं, णयरम्मि कुंडले वीरो।
उत्तरफग्गुणिरिक्खे, चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो॥ 549॥[1]

अर्थात् भगवान महावीर कुण्डलपुर जिला नालन्दा (बिहार प्रदेश) में पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुए।

षट्खण्डागम के चतुर्थ खण्ड एवं नवमी पुस्तक की टीका में श्री वीरसेनाचार्य ने भी कहा है कि -

'आषाढ जोण्ण पक्ख छट्ठीए कुण्डलपुर णगराहिव णाहवंश सिद्धत्थ णरिन्दस्स तिसिला देवीए गब्भमागंतणेसु तत्थ अट्ठादिवसाहिय णवमासे अच्छिम चइत्त सुक्ख पक्ख तेरसीए उत्तराफग्गुणी गब्भादो णिक्खंतो।'[2]

वर्तमान समय से 2600 वर्ष पूर्व बिहार प्रान्त के नालन्दा जिले में स्थित **'कुण्डलपुर'** नगर में जब भगवान महावीर ने जन्म लिया तो जन्म से 15 महीने पूर्व से ही माता त्रिशला के आँगन में रत्नवृष्टि हुई थी। इस रत्नवृष्टि के विषय में **'उत्तरपुराण'** नामक ग्रन्थ में श्रीगुणभद्रसूरि कहते हैं -

तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति।
भरतेस्मिन् विदेहाख्ये, विषये भवनांगणे॥ 251॥

राज्ञः कुंडपुरेशस्य, वसुधारापतत्पृथु।
सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः, सिद्धार्थस्य दिनं प्रति॥ 252॥

आषाढे सिते पक्षे ----------॥[3]

अर्थात् - जब अच्युत स्वर्ग में उसकी आयु छह महीने की रह गई और वह स्वर्ग से अवतार लेने के सम्मुख हुआ, उस समय इस भरतक्षेत्र के विदेह नामक देश में **'कुण्डलपुर'** नगर के राजा सिद्धार्थ के घर प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ मणियों की भारी वर्षा होने लगी।

हरिवंशपुराण में भी श्री जिनसेनाचार्य ने द्वितीय सर्ग के अन्दर श्लोक नं. 5 से 24 तक महावीर स्वामी के गर्भकल्याणक का प्रकरण लिखते हुए कुण्डलपुर नगरी का विस्तृत वर्णन किया है तथा उस नगरी की महिमा महावीर के जन्म से ही सार्थक बताते हुए कहा है कि -

एतावतैव पर्याप्तं, पुरस्य गुणवर्णनम्।
स्वर्गावतरणे तद्यद्वीरस्याधारतां गतम्॥ 12॥[4]

* संघस्थ - गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी, C/o. दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर - 250 404 (मेरठ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् - इस कुण्डलपुर नगर के गुणों का वर्णन तो इतने से ही पर्याप्त हो जाता है कि यह नगर स्वर्ग से अवतार लेते समय भगवान महावीर का आधार बनी, भगवान महावीर वहाँ स्वर्ग से आकर अवतीर्ण हुए।

यहाँ विदेह देश के वर्णन से पूरा विहार प्रान्त माना गया है। उसके अन्दर एक विशाल (96 मील का) नगर था। जैसे मालवा देश में 'उज्जयिनी' नगरी, कौशल देश में 'अयोध्या' नगरी, वत्सदेश में 'कौशाम्बी' नगरी आदि के वर्णन से बड़े-बड़े जिलों एवं प्रान्तों के अन्दर राजधानी के रूप में भगवन्तों की जन्मनगरियाँ समझना चाहिये न कि आज के समान छोटे से ग्राम को तीर्थंकर की जन्मभूमि कहना चाहिये।

महाकवि श्री पुष्पदन्त विरचित अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ **'वीरजिणिंदचरिउ'** में वर्णन *आया है कि* -

इह जंबुदीवि भरहंतरालि।
रमणीय विसई सोहा विसालि॥
कुंडउरि राउ सिद्धत्थ सहिउ।
जो सिरिहरू मग्गण वेस रहिउ॥[5]

इन पद्यों का हिन्दी अनुवाद करते हुए डॉ. हीरालाल ने लिखा है कि - जब महावीर स्वामी का जीव स्वर्ग से च्युत होकर मध्यलोक में आने वाला था तब सौधर्म इन्द्र ने जगत कल्याण की कामना से प्रेरित होकर कुबेर से कहा -

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में विशाल शोभाधारी विदेह प्रदेश में **कुण्डलपुर** नगर के राजा सिद्धार्थ राज्य करते हैं, ऐसे उन राजा सिद्धार्थ की प्रिय रानी प्रियकारिणी के शुभ लक्षणों से युक्त पुत्र चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा जिनके चरणों में इन्द्र भी नमन करेंगे। अतएव हे कुबेर! इन दोनों के निवास भवन को स्वर्णमयी, कान्तिमान् व देवों की लक्ष्मी के विलासयोग्य बना दो। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने कुण्डलपुर को ऐसा ही सुन्दर बना दिया। इसी प्रकरण में आगे देखें -

पहुपंगणि तेत्थु वंदिय चरम जिणिंदें।
छम्मास विरइय रयणविट्ठि जक्खिंदें॥ 7 ॥[6]

अर्थात् - ऐसे उस राजभवन के प्रांगण में अंतिम तीर्थंकर की वन्दना करने वाले उस यक्षों के राजा कुबेर ने छह मास तक रत्नों की वर्षा की।

माणिक्यचन्द्र जैन बी.ए. खंडवा निवासी ने सन् 1908 में लिखी हुई अपनी पुस्तक LIFE OF MAHAVIRA (महावीर चरित्र) में कुण्डलपुर के विषय में निम्न निष्कर्ष दिये हैं -

1. The Description of the magnificence of his palace ; the ceremonious rejoicings with which the birth of Mahavira was celebrated and the grandevr and pomp of his court ; make us believe that Siddhartha was a powerful monarch of his time and his metropolis ; Kundalpura ; a big popular city.[7]

अर्थात् - महाराजा सिद्धार्थ के महल की भव्यता, महावीर के जन्म पर मनाई गई खुशियाँ एवं उनके राजदरबार के वैभव का वर्णन हमें इस तथ्य के लिये विश्वस्त कर देते हैं कि सिद्धार्थ अपने समय के शक्तिशाली राजा थे और उनका महानगर **'कुण्डलपुर'** एक बड़ा घनी जनसंख्या वाला नगर था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. As to the birthplace of Mahavira ; it is probable but not certain ; as Dr. Hoernle suggests ; that the Jaina tradition which represents Kundalpura as a large town may be correct ; in as much as Kundalpura is taken as equivalent to Vesali (Sanskrit Vaishali). He puts his birthplace at Kollaga ; another sub of Vesali .....

उपर्युक्त कथन के द्वारा लेखक श्री माणिक्यचन्द्रजी ने एक विदेशी विद्वान् के द्वारा वैशाली के एक स्थान **'कोलागा'** को भगवान महावीर का जन्मस्थान कहने पर अपना तर्क प्रस्तुत किया है कि **'कोलागा'** को महावीर की जन्मभूमि मानना बिल्कुल अनावश्यक एवं निराधार है क्योंकि **'कुण्डलपुर'** उनका जन्मस्थान निर्विवादित सत्य है जैसा कि उन्हीं के शब्दों में देखें -

'Both the Digambaras and Shvetambaras assert that Kundalpura was the place where He was born[8].

अर्थात् दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही एकमत से कुण्डलपुर को ही महावीर स्वामी की जन्मभूमि मानते हैं।

उन्होंने अपनी इसी पुस्तक में **'महावीरपुराण'** का सन्दर्भ देते हुए कुण्डलपुर को एक बड़े शहर के रूप में स्वीकार किया है - अर्थात् कुण्डलपुर शहर एक बड़ी राजधानी के रूप में सर्वतोमुखी मान्यता का केन्द्र रहा है क्योंकि राजा चेटक अपनी पुत्री त्रिशला जैसी तीर्थंकर जन्मदात्री कन्या का विवाह किसी छोटे-मोटे जमींदार से तो कर नहीं देते बल्कि अपने से भी उच्चस्तरीय राजघराने में ही करते। इसी बात को **LIFE OF MAHAVIRA** में बताया है -

All these remarks go to show that Sidhharth ; if not a powerful monarch ; exercised atleast ; a kingly authority ; if not more to that of Chetaka.[9]

ये कतिपय प्रमाण यहाँ महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर से सम्बन्धित दिये गये हैं। अब महावीर के ननिहाल **'वैशाली'** के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिये -

वीरजिणिंदचरिउ ग्रन्थ की पाँचवीं सन्धि में श्री पुष्पदंत महाकवि कहते हैं कि राजा श्रेणिक ने समवसरण में गौतम गणधर से पूछा कि हे भगवन! मुझे उस आर्यिका चन्दना का चरित्र सुनाइये जिसके शरीर में चन्दन की सुगन्ध है तथा जिसने मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को दूर कर दिया है। राजा के इस प्रश्न को सुनकर गौतमस्वामी ने कहा कि हे श्रेणिक! मैं चन्दना का वृत्तान्त कहता हूँ सो सुनो -

सिन्धु - विसई वइसाली - पुरवरि।
घर - सिरि - ओहामिय - सुर - वर - घरि॥
चेडउ णाम णरेसरु णिवसइ।
देवि अखुद्द सुहद्द महासई॥[10]

अर्थात् सिन्धुविषय (नदी प्रधान विदेह नामक प्रदेश) में **वैशाली** नामक नगर है जहाँ के घर अपनी शोभा से देवों के विमानों की शोभा को भी जीतते हैं। उस नगर में **चेटक** नामक नरेश्वर निवास करते हैं।

उनकी महारानी महासती सुभद्रा से उनके धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, शिवदत्त, हरिदत्त,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्बोज, कम्पन, प्रयंग, प्रभंजन और प्रभास नामक दस पुत्र उत्पन्न हुए।

उनकी अत्यन्त रूपवती सात पुत्रियाँ भी हुईं जिनके नाम हैं - प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभादेवी, चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना। इनमें से प्रियकारिणी (त्रिशला) का विवाह श्रेष्ठ नाथवंशी कुण्डलपुर नरेश सिद्धार्थ के साथ कर दिया गया।

इसी प्रकार उत्तरपुराण के 75 वें पर्व में वर्णन आया है -

सिंध्वाख्ये विषये भूभृद्वैशाली नगरेभवत्।
चेटकाख्योतिविख्यातो विनीत: परमार्हत:॥ 3॥[11]

इस ग्रन्थ में भी राजा चेटक के दस पुत्र एवं सात पुत्रियों का कथन करते हुए ग्रन्थकार ने कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ का वर्णन किया है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सहज समझा जा सकता है कि बिहार प्रान्त में कुण्डलपुर और वैशाली दोनों अलग - अलग राजाओं के अलग - अलग नगर थे तथा कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ एवं वैशाली के राजा चेटक का अपना - अपना विशेष अस्तित्व था। अत: एक - दूसरे के अस्तित्व को किसी की प्रदेश सीमा में गर्भित नहीं किया जा सकता है।

कुछ व्यवहारिक तथ्य -

1. किसी भी कन्या का विवाह हो जाने पर उसका वास्तविक परिचय ससुराल से होता है न कि मायके (पीहर) से।
2. उसकी सन्तानों का जन्म भी ससुराल में ही होता है। हॉ! यदि ससुराल में कोई विशेष असुविधा हो या सन्तान का जन्म वहाँ शुभ न होता हो तभी उसे पीहर में जाकर सन्तान को जन्म देना पड़ता है।
3. पुत्र का वंश तो पिता के नाम एवं नगर से ही चलता है न कि नाना - मामा के वंश और नगर से उसकी पहचान उचित लगती है।

इन व्यवहारिक तथ्यों से महावीर की पहचान ननिहाल वैशाली और नाना चेटक से नहीं किन्तु पिता की नगरी कुण्डलपुर एवं पिता श्री सिद्धार्थ राजा से ही मानना शोभास्पद लगता है। अपना घर एवं नगर भले ही छोटा हो किन्तु महापुरूष दूसरे की विशाल सम्पत्ति एवं नगर से अपनी पहचान बनाने में गौरव नहीं समझते हैं।

फिर वैशाली के दस राजकुमार किनके उत्तराधिकारी बने?

जैन ग्रन्थों के पौराणिक तथ्यों से यह नितान्त सत्य है कि राजा चेटक के दस पुत्र एवं सात पुत्रियाँ थीं। इनमें से पाँच पुत्रियों के विवाह एवं दो के दीक्षाग्रहण की बात भी सर्वविदित है। किन्तु यदि तीर्थंकर महावीर को वैशाली के राजकुमार या युवराज के रूप में माना गया तो राजा चेटक के दशों पुत्र अर्थात् महावीर के सभी मामा क्या कहलाएंगे? क्या वे कुण्डलपुर के राजकुमार कहे जाएंगे?

यह न्यायिक तथ्य भी महावीर को कुण्डलपुर का युवराज स्वीकार करेगा न कि वैशाली का। अत: कुण्डलपुर के राजकुमार के रूप में ही महावीर का अस्तित्व सुशोभित होता है।

अपनी शोध साम्रगी छोड़कर दूसरे साक्ष्यों पर विश्वास क्यों करें?

महावीर के पश्चात् जैनशासन दिगम्बर और श्वेताम्बरों इन दो परम्पराओं में विभक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो गया यद्यपि यह एक ऐतिहासिक सत्य है तथापि आज भी दिगम्बर जैनधर्म के अतिप्राचीन प्रमाण मौजूद हैं जिनमें महावीर का जन्मस्थान कुण्डलपुर ही माना गया है और उन तथ्यों के आधार पर तीर्थंकर के जन्म से पूर्व 15 माह तक रत्नवृष्टि उनकी माता के महल में ही होने के प्रमाण हैं न कि नाना-नानी के आँगन में रत्नवृष्टि हो सकती है। पुन: जहाँ रत्नवृष्टि हुई है, भगवान का जन्म तो उसी घर में मानना पड़ेगा अत: ''महावीर का जन्म त्रिशला माता की कुक्षि से कुण्डलपुर में ही हुआ था'' यह दृढ़ श्रद्धान रखते हुए कुण्डलपुर को विकास और प्रचार की श्रेणी में अवश्य लाना चाहिए।

कुण्डलपुर के विषय में वर्तमान अर्वाचीन (दूसरे साहित्य के अनुसार) शोध का महत्व दर्शाते हुए यदि दिगम्बर जैन ग्रन्थों की प्राचीन शोधपूर्ण वाणी को मद्देनजर (उपेक्षित) करके वैशाली को महावीर जन्मभूमि के नाम से माना जा रहा है तो अन्य ग्रन्थानुसार महावीर के दूसरा भाई, महावीर का विवाह, जन्म से पूर्व उनका गर्भपरिवर्तन आदि अनेक बातें भी हमें स्वीकार करनी चाहिए, किन्तु शायद इन बातों को कोई भी दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी स्वीकार नहीं कर सकते हैं। अत: हमारा अनुरोध है कि अपनी परमसत्य जिनवाणी को आज के शोध की बलिवेदी पर न चढ़ाकर संसार के समक्ष महत्वपूर्ण प्राचीन दि. जैन ग्रन्थों के दस्तावेज प्रस्तुत करना चाहिए।

वैशाली का विकास हो किन्तु महावीर जन्मभूमि के नाम से नहीं -

जहाँ जिस क्षेत्र में तीर्थंकर जैसे महापुरुषों के जन्म होते हैं वहाँ की तो धरती ही रत्नमयी और स्वर्णमयी हो जाती है अत: वहाँ दूर-दूर तक यदि उत्खनन में कोई पुरातत्व सामग्री प्राप्त होती रहे तो कोई अतिशयोक्ति वाली बात नहीं है अर्थात् महावीर के ननिहाल वैशाली में यदि कोई अवशेष मिले हैं तो वे जन्मभूमि के प्रतीक न होकर यह पौराणिक तथ्य दर्शाते है कि तीर्थंकर महावीर के अस्तित्व को वैशाली में भी उस समय मानकर उनके नामा-मामा सभी गौरव का अनुभव करते हुए सिक्के आदि में उनके चित्र उत्कीर्ण कराते थे तभी वे आज पुरातत्व के रूप में प्राप्त हो रहे हैं।

दिगम्बर परम्परानुसार तीर्थंकर तो अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र ही होते हैं अर्थात् उनके कोई भाई नहीं होता अत: माता-पिता के स्वर्गवासी होने के पश्चात कुण्डलपुर की महिमा वैशाली में महावीर के मामा आदि जाति बन्धुओं ने प्रसारित कर वहाँ कोई महावीर का स्मारक भी बनवाया हो तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अत: संभव है कि उस स्मारक के अवशेष वहाँ मिल रहे हों।

वर्तमान में भी यदि वैशाली जनसामान्य के आवागमन की सुविधा युक्त नगर है तो वहाँ महावीर स्वामी का स्मारक आज भी जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र बन सकता है किन्तु विद्वानों को उपर्युक्त विषयों पर गहन चिंतन करके ऐसा निर्णय लेना चाहिए कि प्राचीन सिद्धान्त धूमिल न होने पावें और भगवान महावीर के 2600 वें जन्मजयंति महोत्सव मनाने के साथ ही जैन समाज के द्वारा कोई ऐसा विवादित कार्य न हो जावे कि महावीर की असली जन्मभूमि ''कुण्डलपुर'' ही विवाद के घेरे में पड़कर महावीर जन्मभूमि के सौभाग्य से वंचित हो जावे।

महावीरकालीन कुण्डलपुर को शहर की एक कालोनी नहीं कह सकते -

तीर्थंकर महावीर की जन्मनगरी में साक्षात् सौधर्म इन्द्र एक लाख योजन के ऐरावत हाथी पर बैठकर आता है और वहाँ भारी प्रभावना के साथ जन्मकल्याणक महोत्सव मनाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है अत: उस नगरी का प्रमाण साधारण नगरियों के समान न मानकर अत्यन्त विशेष नगरी मानना चाहिए।

जैसा कि शास्त्रों में वर्णन भी है कि तीर्थंकर की जन्मनगरी को उनके जन्म से पूर्व स्वर्ग से इन्द्र स्वयं आकर व्यवस्थित करते हैं। जिस कुण्डलपुर को स्वयं इन्द्रों ने आकर बसाया हो उसके अस्तित्व को कभी नकारा नहीं जा सकता है तथा उसके अन्तर्गत अन्य नगरों का मानना तो उचित लगता है, न कि अन्य नगरियों के अन्तर्गत। जैसे दिल्ली शहर की एक कालोनी की भाँति ''कुण्डलपुर'' को नहीं मानना चाहिए।

कालपरिवर्तन के कारण लगभग 2500 वर्षों बाद उस कुण्डलपुर नगरी की सीमा भी यदि पहले से काफी छोटी हो गई है तो भी उसके सौभाग्यमयी अस्तित्व को नकार कर किसी बड़े नगर को महावीर जन्मभूमि का दर्जा प्रदान कर देना उसी तरह अनुचित लगता है कि जैसे हमारा पुराना घर यदि आगे चलकर गरीब या खण्डहर हो जाए तो किसी पड़ोसी बड़े जमींदार के घर से अपने अस्तित्व की पहचान बनाना।

अभिप्राय यह है कि सर्वप्रथम तो महावीर की वास्तविक जन्मभूमि कुण्डलपुर नगरी का जीर्णोद्धार, विकास आदि करके उसे खूब सुविधा सम्पन्न करना चाहिए, उसे विलुप्त करने का दुस्साहस तो कदापि नहीं होना चाहिए।

यदि 50 वर्ष पूर्व समाज के वरिष्ठ लोगों ने सूक्ष्मता से दिगम्बर जैन ग्रन्थों का अवलोकन किए बिना कोई गलत निर्णय ले लिया तो क्या प्राचीन सिद्धान्त आगे के लिए सर्वथा बदल दिए जाएँगे?

मेरी तो दिगम्बर जैन धर्मानुयायियों के लिए इस अवसर पर विशेष प्रेरणा है कि यदि इसी तरह निराधार और नए इतिहासविदों के अनुसार प्राचीन तीर्थों का शोध चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब अपने हाथ से कुण्डलपुर, पावापुरी, अयोध्या, अहिच्छत्र आदि असलीतीर्थ निकल जाएँगे क्योंकि आज तो बिजौलिया (राज.) के लोग अहिच्छत्र तीर्थ को अस्वीकार करके बिजौलिया में भगवान पार्श्वनाथ का उपसर्ग होना मानते हैं। इसी प्रकार सन् 1993 में एक विद्वान अयोध्या में एक संगोष्ठी के अन्दर वर्तमान की अयोध्या नगरी पर ही प्रश्नचिन्ह लगाकर उसे अन्यत्र विदेश की धरती (कम्बोडिया) पर बताने लगे तब पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने उन्हें यह कहकर समझाया था कि शोधार्थी विद्वानों को इतना भी शोध नहीं करना चाहिए कि अपनी (जिनवाणी) माँ पर ही सन्देह की सुई टिकने लगे अर्थात् तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित जिनवाणी एवं परम्पराचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों को सन्देह के घेरे में डालकर या उन्हें झूठा ठहराकर अनुमान एवं किंचित साम्य के आधार पर लिखे गए शोध प्रबन्ध हमें मंजूर नहीं हैं।

शोध का अर्थ क्या है?

मुझे समझ में नहीं आता - प्राचीन मूल परम्परा पर कुठाराघात करके अर्वाचीन ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करना ही क्या शोध की परिभाषा है? वैशाली कभी भी सर्वसम्मति से महावीर की जन्मभूमि के रूप में स्वीकार नहीं की गई क्योंकि अनेक साधु-साध्वी इस विषय से सन् 1974 में भी असहमत थे और आज भी असहमत हैं। यदि इस जन्मजयन्ती महोत्सव पर वैशाली को ''महावीरस्मारक'' के रूप में विकसित किया जाता है तब तो संभवत: कोई साधु-साध्वी, विद्वान अथवा समाज का प्रबुद्धवर्ग उसे मानने से इंकार नहीं करेगा किन्तु महावीर की जन्मभूमि वैशाली के नाम पर अधिकांश विरोध के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर गूंजेंगे।

इस विषय में चिन्तन का विषय यह है कि यदि दिगम्बर जैन समाज के ही लोग अपने प्राचीन आगम के प्रमाण छोड़कर दूसरे ग्रन्थों एवं अर्वाचीन इतिहासज्ञों के कथन प्रामाणिक मानने लगेंगे तो उन पूर्वाचार्यों द्वारा कथित आगम के प्रमाण कौन सत्य मानेंगे? इस तरह तो **''प्राचीन भारत''**[12] पुस्तक में इतिहासकार प्रो. रामशरण शर्मा द्वारा लिखित जैन धर्म के लिए मिथक कथाओं का गढ़ा जाना आदि बातें भी सत्य मानकर जैन धर्म को भगवान महावीर द्वारा संस्थापित मानने में भी हमें कोई विरोध नहीं होना चाहिए? यदि सन् 1972 में लिखे गए उस कथन का हम आज विरोध कर उसे पूर्ण असंगत ठहराते हैं तो वैशाली को महावीर की जन्मभूमि कहने पर भी हमें इतिहास को धूमिल होने से बचाने हेतु गलत कहना ही पड़ेगा अन्यथा अपने हाथों से ही अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने के अतिरिक्त कोई अच्छा प्रतिफल सामने नहीं आएगा।

हम तो शोध का अर्थ यह समझते हैं कि अपने मूल इतिहास एवं सिद्धान्तों को सुरक्षित रखते हुए वर्तमान को प्राचीनता से परिचित कराना चाहिए। वैशाली में न तो महावीर स्वामी का कोई प्राचीन मंदिर है और न ही उनके महल आदि की कोई प्राचीन इमारत मिली है, केवल कुछ वर्ष पूर्व वहाँ ''कुण्डग्राम'' नाम से एक नवनिर्माण का कार्य शुरू हुआ है। जैसा कि पण्डित बलभद्र जैन ने भी **''भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ''**[13] नामक ग्रन्थ में कुण्डलपुर तीर्थ के विषय में लिखा है -

''कुण्डलपुर बिहार प्रान्त के पटना जिले में स्थित है। यहाँ का पोस्ट आफिस नालन्दा है और निकट का रेल्वे स्टेशन भी नालन्दा है। यहाँ भगवान महावीर के गर्भ, जन्म और तपकल्याणक हुए थे, इस प्रकार की मान्यता कई शताब्दियों से चली आ रही है। यहाँ पर एक शिखरबन्द मंदिर है जिसमें भगवान महावीर की श्वेतचूर्ण की साढ़े चार फुट अवगाहना वाली भव्य पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। वहाँ वार्षिक मेला चैत्र सुदी 12 से 14 तक महावीर के जन्मकल्याणक को मनाने के लिए होता है।''

कुण्डलपुर या कुण्डपुर को कुण्डग्राम कहकर वैशाली साम्राज्य की एक शासित इकाई मानते हुए क्या हमारे कुछ विद्वान राजा सिद्धार्थ को चेटकराजा का घरजमाई जैसा तुच्छ दर्जा दिलाकर उन्हें वैशाली के ही एक छोटे से मकान का गरीब श्रावक सिद्ध करना चाहते है? क्या तीर्थंकर के पिता का कोई विशाल अस्तित्व उन्हें अच्छा नहीं लगता है?

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी इस विषय में बतलाती है कि सन् 1974 में महावीर स्वामी के 2500 वें निर्वाणमहोत्सव के समय पूज्य आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज, आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज, पण्डितप्रवर सुमेरचन्द दिवाकर, पंडित मक्खनलाल शास्त्री, डा. लालबहादुर शास्त्री - दिल्ली, पं. मोतीचंद कोठारी - फल्टण आदि अनेक विद्वानों से चर्चा हुई तो सब एक स्वर से कुण्डलपुर वर्तमान तीर्थ क्षेत्र को ही महावीर जन्मभूमि के रूप में स्वीकृत करते थे, वैशाली किसी को भी जन्मभूमि के रूप में इष्ट नहीं थी।

इसी प्रकार कुछ पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर ''वैशाली'' को महावीर जन्मभूमि के नाम से मान्यता नहीं दिलाई जा सकती है अतः विद्वान आचार्य, साधु - साध्वी सभी गहराई से चिंतन कर कुण्डलपुर की खतरे में पड़ी अस्मिता की रक्षा करें।

जन्मभूमि के बाद निर्वाणभूमि की भी बारी आने वाली है!

वर्तमान की बुद्धिजीवी पीढ़ी ने महावीर स्वामी की कल्याणक भूमियों के भ्रामक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचार का मानो ठेका ही ले लिया है। इसे शायद पंचमकाल या हुण्डावसर्पिणी का अभिशाप ही कहना होगा कि महावीर स्वामी की जन्म एवं निर्वाण दोनों भूमियों को विवादित कर दिया गया है।

पच्चीस सौ सत्ताइस वर्षों पूर्व बिहार प्रान्त की जिस पावापुर नगरी से महावीर ने मोक्षपद प्राप्त किया वह आज भी जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र है और प्रत्येक दीपावली पर वहाँ देशभर से हजारों श्रद्धालु निर्वाणलाडू चढ़ाने पहुँचते हैं। जैसा शास्त्रों में वर्णन आया है बिल्कुल उसी प्रकार की शोभा से युक्त पावापुरी का सरोवर आज उपलब्ध है और उसके मध्यभाग में महावीर स्वामी के अतिशयकारी श्रीचरण विराजमान हैं फिर भी कुछ विद्वान एवं समाजनेता गोरखपुर (उ.प्र.) के निकट सठियावां ग्राम के पास एक ''पावा'' नामक नगर को ही महावीर की निर्वाणभूमि पावा सिद्धक्षेत्र मानकर अपने अहं की पुष्टि कर रहे हैं।

इस तरह की शोध अपने तीर्थ और शास्त्रों के प्रति चलती रही तब तो सभी असली तीर्थ एवं ग्रन्थों पर प्रश्नचिन्ह लग जाएँगे तथा जैन धर्म की वास्तविकता ही विलुप्त हो जाएगी। पावापुरी के विषय में भी अनेक शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध हैं किन्तु यहाँ विषय को न बढ़ाते हुए केवल प्रसंगोपात्त जन्मभूमि प्रकरण को ही प्रकाशित किया गया है सो विज्ञजन स्वयं समझें एवं दूसरों को समझावें।

सन्दर्भ स्थल -

1. श्री यतिवृषभाचार्य, चउत्थो महाधियारो, तिलोयपण्णत्ति, पृ. 210
2. षट्खण्डागम (नवमी पुस्तक), श्री वीरसेनाचार्य कृत धवला टीका सहित, चतुर्थ खण्ड, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर
3. उत्तरपुराण, आचार्य गुणभद्र सूरि, पर्व 74
4. हरिवंश पुराण, आचार्य जिनसेन, द्वितीय सर्ग, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
5. वीरजिणिंदचरिउ, अपभ्रंश भाषा, महाकवि श्री पुष्पदंत, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1974, पृष्ठ 11 - 12 - 13
6. वही
7. LIFE OF MAHAVIRA, (महावीर चरित्र), माणिक्यचन्द्र जैन, खंडवा, पृ. 14 - 15.
8. वही, पृ. 17.
9. वही, पृ. 16.
10. वीरजिणिंदचरिउ, अपभ्रंश भाषा, पांचवीं संधि, महाकवि श्री पुष्पदंत, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1974, पृष्ठ 60
11. उत्तर पुराण, पर्व 75.
12. प्राचीन भारत, प्रो. रामशरण शर्मा, NCERT, नई दिल्ली.
13. भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, खंड - बंगाल, बिहर, उड़ीसा के तीर्थ, पं. बलभद्र जैन, हीराबाग, मुम्बई, 1975.

प्राप्त - 23.3.01

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 17 - 26

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

तीर्थंकर महावीर पर आधारित प्रबन्ध काव्य

■ कु. रश्मि जैन*

भगवान महावीर का चरित्र साहित्यकारों के लिये प्रारम्भ से ही प्रेरणा का स्रोत रहा है। रचनाकारों ने उनके उदात्त चरित्र में मानव जीवन की असीमित संभावनाओं को देखा है और उसे विविध भाषाओं में अभिव्यक्ति दी है। देवभाषा संस्कृत से लेकर नागरी लिपि हिन्दी तक का साहित्य भगवान महावीर के चरित्र की गाथा को वर्णित करता रहा है। प्रस्तुत आलेख में उनके चरित्र संबंधी प्रबंध ग्रंथों पर यथावश्यक प्रकाश डाला गया है।

संस्कृत काव्य -

1 **वर्धमान चरितम्** - 'सन्मति चरित्र' या 'महावीर चरित्र' नाम से प्रसिद्ध इस महाकाव्य की रचना कवि असग ने शक संवत् 911 (988 ई.) में की। इसमें तीर्थंकर महावीर के पूर्वभवों तथा वर्तमान जीवन का चित्रण 16 सर्गों में निबद्ध है। कवि ने इसका आधार यतिवृषभाचार्य कृत 'तिलोयपण्णत्ती' तथा गुणभद्राचार्य कृत 'उत्तरपुराण' को बनाया है।

2. **वर्धमान चरित** - इसके अपर नाम 'वर्धमान पुराण' एवं 'महावीर पुराण' भी हैं। भट्टारक सकलकीर्ति ने विक्रम संवत् 1518 में इसका सृजन किया। 19 अधिकार वाले इस काव्य में भगवान महावीर के पूर्वभवों तथा वर्तमान भव का आद्योपांत विस्तृत वर्णन हुआ है। कवि ने प्रत्येक अधिकार के अंत में जो पुष्पिका दी है, उसके अनुसार ग्रंथ का नाम 'वीर वर्धमान चरित' है। 'वीर वर्धमान चरितम्' (संस्कृत - हिन्दी) नाम से संपादन - अनुवाद डॉ. हीरालाल जैन ने किया जो सन् 1974 में भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

3. **वर्धमान काव्य या वर्धमान चरित** - भट्टारक मुनि पद्मनंदीजी ने इसकी रचना की। इसके रचनाकाल संबंधी निश्चित उल्लेख नहीं मिलता है। इसकी एक प्रति (लिपिकाल सं. 1518) जयपुर के पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भंडार में तथा दूसरी प्रति (लिपिकाल सं. 1522) सूरत के गोपीपुरा मंदिर के शास्त्र भंडार में सुरक्षित है।[1]

4. **वर्धमान चरित** - भट्टारक विद्याभूषण द्वारा रचित इस कृति का उल्लेख मिलता है। कवि की अन्य रचनाओं 'जम्बूस्वामी चरित्र' तथा 'पल्यविधान पूजा' के आधार पर 'वर्धमान चरित' का समय विक्रम की 17वीं शती माना जा सकता है।[2]

5. **वीरोदय** - यह बीसवीं शती का महाकाव्य है। इसके रचयिता ब्रह्मचारी कवि पंडित भूरामल शास्त्री थे, जो बीसवीं शताब्दी के दिगम्बर आचार्य मुनि ज्ञानसागरजी के रूप में प्रसिद्ध हुए। इस कृति में कवि ने 22 सर्गों में भगवान महावीर का चरित्र देश की आधुनिक समस्याओं के निराकरण को ध्यान में रखते हुए आधुनिक शैली में वर्णित किया है। यह छह सर्गों पर स्वोपज्ञ संस्कृत टीका तथा अन्य सर्गों पर स्वोपज्ञ हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है।

6. **मंगलायतनम्** - महावीर चरित्र विषयक बिहारीलाल शर्मा द्वारा रचित 'मंगलायतनम्' का उल्लेख मिलता है। यह कृति वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन, वाराणसी से सन् 1975 में प्रकाशित हुई है।[3]

7. **वीरशर्माभ्युदय** - महाकवि पं. भूरामलजी (आचार्य ज्ञानसागरजी) ने संस्कृत में 'वीरशर्माभ्युदय' काव्य का सृजन किया। श्री दिगम्बर जैन मंदिर, दाँता - रामगढ़, जिला सीकर (राजस्थान)

* सहायक प्राध्यापक - हिन्दी, शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना। C/o. दिनेश ट्रेडर्स, सर्वोदय चौक, बीना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से 'वीरशर्माभ्युदय' नाम से दो पांडुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। एक प्रति में कवि द्वारा रचित भगवान महावीर चरित्र संबंधी संस्कृत श्लोक तथा उसका हिन्दी अर्थ है। यह रचना दो खण्डों में है। प्रथम खण्ड में 7 सर्ग और 777 श्लोकों तथा द्वितीय (उत्तर) खण्ड में 578 श्लोकों में सम्पूर्ण कथा निबद्ध है। इसमें कवि भूरामलजी ने 'शांतिकुमार' नाम से रचना की है। दूसरी पांडुलिपि में कवि द्वारा रचित संस्कृत श्लोक, उनकी स्वोपज्ञ संस्कृत टीका तथा हिन्दी अर्थ है। इसमें 6 सर्गों में 539 श्लोक मिलते हैं। पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य ने इसका संस्कृत अनुवाद 'वीरेन्द्रशर्माभ्युदय' नाम से किया है। सम्प्रति ये काव्य अप्रकाशित हैं। इनकी पांडुलिपियाँ परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी के शिष्य पूज्य मुनि श्री अभयसागरजी महाराज के पास संरक्षित हैं।

संस्कृत भाषा में स्वतंत्र रचनाओं के अलावा अंतर्भुक्त रूप से भी पद्यमय अन्य रचनाओं का उल्लेख मिलता है। गुणभद्राचार्य कृत 'उत्तरपुराण' (शक संवत् 820) के 3 सर्गों (74 से 76) में, हेमचन्द्राचार्य कृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष' का अंतिम पर्व, मेरुतुंग कृत 'महापुरुष चरित' स्वोपज्ञ टीका सहित (लगभग 1300 ई.) कृति का 5वाँ सर्ग महावीर चरित्र विषयक है। महाकवि दामनन्दि (11 वीं सदी) कृत 'पुराण सार संग्रह' में भगवान महावीर का चरित्र वर्णित है। स्फुट रूप में सिद्धसेन दिवाकर ने पाँच स्तुतियाँ तथा विनयप्रभ ने 'महावीर स्तवन' (सं. 1411 में) लिखा। 19वीं सदी के अंत में पंडित भागचन्दजी ने 'महावीराष्टक' आठ पद्यों में लिखा।

प्राकृत काव्य –

8. महावीर चरियम् – अंतिम तीर्थंकर महावीर के जीवन पर आधारित प्राकृत भाषा की रचना है। गुणचन्द्रसूरि (देवभद्रसूरि) ने विक्रम सम्वत् 1139 में इसकी रचना की। इसमें आठ प्रस्ताव हैं। प्रारम्भिक 4 प्रस्तावों में पूर्वभवों तथा अंतिम 4 प्रस्तावों में वर्तमान भव का वर्णन है।

9. महावीर चरियम् – नेमिचन्द्र सूरि (देवेन्द्र गणि) ने सम्वत् 1141 में इसकी रचना की। यह प्राकृत भाषा में भगवान महावीर विषयक दूसरी कृति है। इसमें भगवान महावीर के 26 पूर्वभवों का भी वर्णन है।

10. महावीर चरित – मानदेव सूरि के शिष्य देवसूरि द्वारा रचित 'महावीर चरित' का उल्लेख मात्र मिलता है।

11. महावीर चरित – जिनवल्लभसूरि द्वारा रचित 'महावीर चरित' का भी मात्र उल्लेख ही मिलता है। इसका अपर नाम 'दुरियराय समीर स्तोत्र' है। यह 44 गाथाओं में है।

उक्त दोनों रचनाओं के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हुई है।[4]

अपभ्रंश काव्य –

12. वीर जिणिंद चरिउ – अपभ्रंश भाषा में महापुरुषों के जीवन चरित्र को लेकर महाकवि पुष्पदंत ने शक सं. 887 में 'महापुराण' की रचना की थी। यह 102 संधियों वाला काव्य है। इसमें आठ संधियों (95 से 102 तक) में भगवान महावीर का जीवन चरित्र निबद्ध है। डॉ. हीरालाल जैन ने इस ग्रंथ में वर्णित भगवान महावीर विषयक चरित्र का संकलन - संपादन करके 'वीर जिणिंद चरिउ' शीर्षक से स्वतंत्र काव्य का रूप दिया। यह भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से सन् 1974 में प्रकाशित हुआ है। इसका वैशिष्ट्य यह है कि इसमें 12 संधियाँ हैं। प्रारम्भिक 3 संधियों में तीर्थंकर महावीर के पूर्वभवों से लेकर मोक्ष प्रप्ति तक का वर्णन है। चतुर्थ संधि से लेकर ग्यारहवीं संधि तक जम्बूस्वामी, चंदना, श्रेणिक एवं श्रेणिक पुत्र की योगसाधना आदि का वर्णन है। अंतिम बारहवीं संधि में तीर्थंकर महावीर के धर्मोपदेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का निरूपण किया गया है।

13. **वड्ढमाण चरिउ** – 'जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह' की 120वीं प्रशस्ति कवि 'विबुधश्रीधर' कृत 'वड्ढमाण चरिउ' की है। इसका रचनाकाल विक्रम सम्वत् 1190 है। इसमें 10 संधियाँ हैं। इस कृति की विशेषता यह है कि इसमें भगवान महावीर का चरित्र दिगम्बर परम्परानुसार वर्णित है, साथ ही कुछ घटनाओं का विशिष्ट वर्णन हुआ है, जिसमें श्वेताम्बर परम्परा का प्रभाव परिलक्षित होता है। कवि ने यह रचना वोदाउनगर निवासी साहू नेमिचन्द्र के अनुरोध से की थी, अत: कवि ने प्रत्येक संधि पुष्पिका में 'नेमिचन्दानुमत' लिखा है। इस काव्य का संपादन-अनुवाद डॉ. राजाराम जैन, आरा ने किया। यह भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा सन् 1975 में प्रकाशित हुआ।

14. **महावीर चरिउ** – इसके रचयिता अमरकीर्तिगणि हैं। इनका समय विक्रम की 13वीं शताब्दी है।[5]

15. **वड्ढमाण कहा** – कवि नरसेनकृत इस काव्य का अपर नाम 'जिणरत्तिविहाणकहा' भी है। इसका समय विक्रम की 15वीं शती के लगभग है। इस कृति की विशेषता यह है कि जिस रात्रि में भगवान महावीर ने मोक्ष प्राप्त किया था, उसी व्रत की कथा शिवरात्रि के ढंग पर रची गई है। तीर्थंकर महावीर का चरित्र होने से इस कृति का धार्मिक महत्त्व अधिक है।[6]

16. **सम्मइजिण चरिउ** – अपभ्रंश भाषा में कवि रइधू ने विक्रम की 15वीं शती में इसकी रचना की। इसमें 10 सर्ग तथा 246 कड़वक हैं। इस रचना का संपादन डॉ. राजाराम जैन, आरा ने किया। 'महावीर पुराण' नाम से इस कृति की प्रति कूँचा सेठ दिगम्बर जैन मन्दिर, दिल्ली में संकलित है।

17. **वड्ढमाण कव्वु** – इसके रचनाकार 'जयमित्र हल्ल' हैं। डॉ. परमानन्द शास्त्री ने कवि के अन्य नाम हल्ल, हरिइंद, हरिश्चन्द्र तथा हरिचन्द भी माने हैं। इसमें 11 संधियाँ हैं। इस कृति में दिगम्बर परम्परानुसार वर्णन है तथा कई अन्य नई बातें भी समाविष्ट हैं। कवित्व की दृष्टि से यह श्रेष्ठ रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति (वि.सं. 1550) वधीचन्द दिगम्बर जैन मन्दिर, जयपुर के शास्त्र भंडार में संग्रहीत है।

18. **अपभ्रंश महावीर चरिउ** – अभयदेवसूरि द्वारा अपभ्रंश भाषा में प्रस्तुत रचना खंभात के ताड़पत्रीय भंडार में सुरक्षित है। डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री 'नीमच' ने 'वड्ढमाण चरिउ' नाम से इसका संपादन किया है, ऐसा उल्लेख मिलता है।

19. **महावीर चरिउ** – गुणचन्द्र मुनि द्वारा रचित इस काव्य की प्रति देवचन्द लालाभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रंथ क्रमांक 75 बंबई में सुरक्षित है।

अपभ्रंश भाषा में श्वेताम्बर कवि धनपाल (विक्रम की 11वीं शती) ने 'सत्यपुरी मंडन महावीरोत्साह' (15 पद) की रचना की। रत्नप्रभसूरि ने विक्रम संवत् 1238 में 'महावीर चन्दनबाला पारणा संधि' की रचना की। 101 गाथाओं की यह रचना कवि की अन्य कृति 'उपदेशमाला' में संगृहीत है। कवि वर्धमान सूरि ने 'वीर जिणेसर पारणउ' विक्रम की 13वीं शती में लिखी। 47 गाथाओं की यह रचना पाटन शास्त्र भंडार में सुरक्षित है।

कन्नड़ काव्य –

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के साथ ही कन्नड़ भाषा के कवियों ने महावीर चरित्र सम्बन्धी रचना करके साहित्येतिहास परम्परा में एक नई कड़ी जोड़ने का कार्य किया है।

20. **वीर वर्धमान पुराण** – द्वितीय नागवर्म द्वारा विरचित चम्पू काव्य में 16 सर्ग हैं। इसका रचनाकाल 1042 ई है।[7]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

21. वर्धमान पुराण – आचण्ण कवि कृत इस कृति का आधुनिक कन्नड़ अनुवाद टी.एस. नागराव पंडित नागराजैया द्वारा किया गया। इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा किया गया है। इस काव्य में 16 आश्वास हैं। इसका रचनाकाल 1195 ई. माना गया है।

22. वर्धमान चरित्र – कवि पद्म द्वारा सांगत्य छंद में रचित इस ग्रन्थ में 12 संधियाँ हैं। इसकी रचनावधि 1527 ई. मानी जाती है। साहित्यिक दृष्टि से यह सुन्दर रचना है।[8]

हिन्दी काव्य –

हिन्दी भाषा के कवियों ने अपनी लेखनी से तीर्थंकर महावीर का पद्यबद्ध चरित्रांकन किया। प्राचीन तथा आधुनिक हिन्दी काव्यों में भगवान महावीर का चरित्र श्रेष्ठ काव्यपुरुष के रूप में अंकित किया गया। इन कवियों ने भगवान महावीर पर आधारित प्रबन्ध काव्य परम्परा को गति प्रदान की।

23. महावीर चरित (कल्पसिद्धान्त भाषित) – इसके रचनाकार मध्य युग के प्रथम लक्ष्मण माने जाते हैं। इसकी रचनावधि वि.सं. 1521 है। इसकी भाषा राजस्थानी हिन्दी है।

24. महावीर रास – रास शैली में रचित इस आद्य प्रबंध काव्य की रचना कवि पद्म ने विक्रम संवत् 1609 में की। इसकी काव्य भाषा राजस्थानी हिन्दी है। इसकी मूलप्रति श्री ऐलक पन्नालाल सरस्वती जैन भवन, ब्यावर में सुरक्षित है। इसका संपादन डॉ. राजाराम जैन, आरा ने किया, जो 'महावीर रास' नाम से सन् 1994 में प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर से प्रकाशित हुई है।

25. महावीर रास – भट्टारक कुमुदचन्द्र ने विक्म संवत् 1609 में इसकी रचना की। यह राजस्थानी हिन्दी भाषा का काव्य है।[9]

26. भगवान महावीर रास – वर्धमान कवि द्वारा विक्रम सं. 1665 में रचना हुई। इसकी एकमात्र पांडुलिपि अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, उदयपुर में सुरक्षित है।[10]

27. वर्धमान पुराण – बुंदेलखण्ड के निवासी कविवर नवलशाह द्वारा रचित सचित्र महाकाव्य की रचनावधि वि.सं. 1825 है। स्व. पंडित पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर के संपादकत्व में प्रथम बार सूरत से प्रकाशित हुआ। आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज ने इसका संशोधन - अनुवाद तथा संपादन किया, तत्पश्चात् 'भगवान महावीर और उनका तत्त्व दर्शन' नामक ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड में हिन्दी टीका सहित सचित्र प्रकाशित हुआ। सम्पूर्ण कथावस्तु 16 अधिकारों में संघटित है। कवि की 16 अधिकार रखने संबंधी कल्पना बड़ी सरस एवं सुन्दर है। इसकी काव्य भाषा खड़ी बोली, ब्रज तथा बुंदेली का समुचित मिश्रण है। इसमें भगवान महावीर के पूर्वभव से लेकर मोक्ष प्राप्ति, गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्ति, धर्मोपदेश, विहार आदि के वर्णन के पश्चात् कवि ने अपना विस्तृत परिचय भी दिया है। इसमें जैन सिद्धान्त का तात्त्विक विवेचन भी मिलता है।

28. वर्धमान – बीसवीं सदी में जैनेतर कवि अनूप शर्मा ने खड़ी बोली में 'वर्धमान' काव्य की रचना की। यह सन् 1951 में भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। यह संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में 17 सर्गों की रचना है। इसमें संस्कृत के प्राचीन महाकाव्यों की शास्त्रीय शैली का प्रभाव एवं निर्वाह हुआ है। कवि ने श्वेताम्बर एवं दिगम्बर मान्यताओं में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

29. वीरायण – सौराष्ट्र के राजकवि मूलदास मोहनदास नीमावत ने रामचरित मानस की शैली (चौपाई छंद) पर 'वीरायण' लिखा। यह हिन्दी, गुजराती अनुवाद सहित 1952 ई.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में प्रकाशित हुआ। भगवान महावीर के पूर्वभवों तथा वर्तमान जीवन का श्वेताम्बर मान्यतानुसार सात काण्डों में वर्णन है। इसकी काव्य भाषा अवधी है।

30. **तीर्थंकर श्री वर्धमान** – श्वेताम्बर यति मोतीहंस ने पंडित कल्याणविजय के 'श्रमण महावीर' के आधार पर इसकी सर्जना की। इसमें 11 सर्ग हैं। प्रथम दो सर्गों (च्यवन कल्याणक, जन्म कल्याणक) का प्रकाशन सन् 1959 में जैन श्वेताम्बर संघ, भोपाल से हुआ है।

31. **तीर्थंकर भगवान महावीर** – यह खड़ी बोली में कवि वीरेन्द्रप्रसाद जैन की कृति है। श्री अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज, एटा से सन् 1959 तथा 1965 में प्रकाशित हुई है। तीर्थंकर महावीर विषयक कथा 8 सर्गों में 1111 छंदों में निबद्ध है। कथानक का भाव स्पष्ट करने के लिये कहीं-कहीं सुन्दर और रंगीन चित्र भी दिये हैं। इसमें दिगम्बर मान्यतानुसार कथावस्तु है किन्तु कुछ घटनाओं का समावेश श्वेताम्बर मान्यतानुसार भी किया है। कवि वीरेन्द्रप्रसादजी ने अनूप शर्मा कृत 'वर्धमान' महाकाव्य में जैन कवियों को खटकने वाला त्रिशला रानी का सौदर्य वर्णन तथा ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता मानने संबंधी जैन मान्यतानुसार न होने की भावना से प्रेरित होकर इसकाव्य की रचना की है।

32. **जय सन्मति** – प्रो. हीरालाल पांडे 'हीरक' ने सन् 1953 में 'जय सन्मति' का सृजन किया। यह सन् 1959 में सन्मति साहित्य मंदिर, भोपाल द्वारा प्रकाशित है। इस काव्य की भूमिका में उल्लिखित है कि कवि को 'जयसन्मति' नामकरण की प्रेरणा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 'सबको सन्मति दे भगवान' वाली प्रार्थना से मिली तथा 'सन्मति' भगवान महावीर के पाँच नामों में से एक है। इसमें 8 सर्ग हैं। काव्य के प्रारम्भ में भारतभूमि का गौरवगान किया, तत्पश्चात् भगवान महावीर का आद्योपांत जीवनवृत्त दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मान्यतानुसार वर्णित है।

33. **महावीर** – ललितपुर के कवि श्री हरिप्रसादजी 'हरि' ने 'महावीर' काव्य की रचना की। इसके बारे में उनके सुपुत्र (पालीवाल, ललितपुर) द्वारा जानकारी मिली है कि प्रकाशन के पूर्व यह कृति कहीं गुम हो गई अत: सम्प्रति अप्रकाशित है। कवि सुधेशजी ने लिखा है कि आज से 14 वर्ष मैंने ललितपुर के कवि हरिप्रसादजी 'हरि' से भगवान महावीर विषयक लिखे जाने वाले महाकाव्य के कुछ छंद सुने थे।[11] हरिप्रसाद 'हरि' के अप्रकाशित 'महावीर' महाकाव्य का कुछ अंश 'ओ विहार, वर वसुन्धरे' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।[12]

34. **परम ज्योति महावीर** – कवि धन्यकुमार जैन 'सुधेश' द्वारा खड़ी बोली में सृजित सन् 1960 की कृति है। सन् 1961 में श्री फूलचन्द जवरचन्द गोधा जैन ग्रंथमाला, इन्दौर से प्रकाशित हुई। इसमें 23 सर्ग हैं। सर्वत्र एक ही छंद प्रयुक्त है। प्रत्येक सर्ग में 108 छंद है तथा प्रस्तावना के 33 छंद मिलाकर कुल 2519 छंदों का महाकाव्य है। कवि ने सर्ग संख्या, छंद संख्या रखने का कारण भी बताया है। कवि सुधेशजी ने इसे 'करुण, धर्मवीर एवं शांतरस प्रधान महाकाव्य' कहा है। घटनाओं की पुष्टि के लिये सुन्दर चित्र भी दिये हैं। इसकी विशेषता यह है कि कवि ने भगवान महावीर के पूर्वभवों का वर्णन न करके उनके वर्तमान जीवन की घटनाओं, उपदेशों तथा उनके चातुर्मासों का विस्तृत वर्णन किया है।

35. **वीरायन (महावीर मानस महाकाव्य)** – हिन्दी के सुप्रसिद्ध जैनेतर कवि रघुवीरशरण 'मित्र' कृत 'वीरायन' भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाणोत्सव वर्ष (सन् 1974) में सृजित एवं प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन भारतोदय प्रकाशन, मेरठ से हुआ। कवि ने भगवान महावीर के जीवन संबंधी जानकारी हासिल करने उनसे संबंधित स्थानों का भ्रमण किया था। उन स्थलों की खोजपूर्ण यात्राओं से प्राप्त तथ्यों, साक्ष्यों और प्रमाणों के आधार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर अथक परिश्रम के द्वारा 'वीरायन' की रचना की। इसमें 15 सर्ग हैं। कवि ने भगवान महावीर के वर्णन के साथ-साथ जनकल्याण एवं राष्ट्रोद्धार की बात कही। अतीत के साथ वर्तमान भारत की समस्याओं, कुरीतियों, अभावों का निरूपण कर उनके समाधान हेतु भगवान महावीर की प्रासंगिकता सिद्ध की है। महावीर स्वामी के चरित्र द्वारा 'विश्व के लिये शिव की प्राप्ति होना' ही कवि की कामना है। इसमें 'युवा राजकुमार वर्धमान' का चित्र 'वनपथ सर्ग' से पूर्व दिया है।

36. **चरम तीर्थंकर महावीर** - सन् 1975 में श्री राजेन्द्र प्रवचन कार्यालय श्री मोहनखेड़ा तीर्थ, राजगढ़ (म.प्र.) से प्रकाशित हुआ। इसके रचयिता श्रीमद् आचार्य विजयविद्याचन्द्र सूरि तथा सम्पादक पंडित मदनलाल जोशी हैं। इसका आधार श्वेताम्बर परम्परा है। कवि ने चित्रकार टी.जी. शर्मा, अहमदाबाद के 41 रंगीन चित्रों से सज्जित किया है। काव्य और चित्रकलाओं की अटूट मैत्री से भगवान महावीर का जीवन वीर छंद में प्रस्तुत किया है।

37. **बंधन मुक्ति** - कवयित्री साध्वी मंजूला ने इसका सृजन किया। सन् 1975 में आदर्श साहित्य संघ, चुरु (राजस्थान) से प्रकाशित हुआ। कथावस्तु 9 सर्गों में संयोजित है। इसमें भगवान महावीर के जीवन घटनाक्रम के साथ चंदना की उद्धार कथा, स्याद्वाद, अहिंसा, अपरिग्रह आदि सिद्धान्तों एवं उपदेशों का वर्णन हुआ है।

38. **भगवान महावीर** - प्रस्तुत कृति के प्रणेता श्री रामकृष्ण शर्मा हैं। यह सन् 1975 में सरस्वती सदन, भरतपुर (राजस्थान) से प्रकाशित हुई। इसमें 21 सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में एक रस और एक छंद प्रयुक्त हुआ है। यह रचना 'राष्ट्रीय एकता, अखंडता एवं विश्वशांति के लिये समर्पित' है। इइमें भारत की तत्कालीन परिस्थितियों, भगवान महावीर का जीवनवृत्त तथा जैन दर्शन का तात्त्विक विवेचन किया गया है।

39. **विश्व ज्योति महावीर** - इसकी रचनावधि विक्रम संवत् 2031 तथा रचनाकार श्वेताम्बर यति श्री गणेशमुनि शास्त्री हैं। सन् 1974 में अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर (राजस्थान) से प्रकाशित हुआ है। सम्पूर्ण काव्य 3 खंडों और 43 शीर्षकों में विभक्त है। 'मंगलप्रवेश' में दोहा छंद को छोड़कर आद्योपांत एक ही छंद प्रयुक्त हुआ है।

40. **श्री महावीरायण (महावीर चरित्र मानस)** - इसके रचयिता पंडित रतनचन्द कौछल (म.प्र.) हैं तथा इसका रचनाकाल सम्वत् 2502 है। सन् 1976 में गोपीचन्द राजेन्द्रकुमार सोधिया, महाराजपुर (म.प्र.) ने प्रकाशित किया। इसमें 6 कांडों में कई शीर्षक एवं उपशीर्षकों में भगवान महावीर का जीवनवृत्त समाहित है। यह अवधी भाषा में रामचरितमानस की शैली पर दोहा-चौपाई छन्द की सुन्दर रचना है। सवैया, सोरठा आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। इसमें जैन सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन है। कवि ने भगवान महावीर की माता त्रिशला की स्मृति स्वरूप 'विश्व महिला दिवस' पर तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को समर्पित कर नारी के प्रति सम्मान प्रकट किया है।

41. **श्रमण भगवान महावीर चरित्र** - इसका प्रणयन कवि अभयकुमारजी 'यौधेय' ने किया। यह भगवान महावीर प्रकाशन संस्थान, मेरठ से सन् 1976 में प्रकाशित हुआ है। संपूर्ण कथा श्वेताम्बर मान्यतानुसार 9 सोपानों में विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत संघटित है।

42. **तीर्थंकर महावीर** - इसका सृजन अवन्तिका के कवि छैलबिहारी गुप्त ने मुनि श्री विद्यानंदजी की प्रेरणा से मात्र पाँच माह में सन् 1975 में किया। यह वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इन्दौर द्वारा सन् 1976 में प्रकाशित हुई। इसमें भगवान महावीर का चरित्र 8 शीर्षक विहीन सर्गों में समाहित है। पद्मश्री बाबूलालजी पाटोदी ने लिखा है - 'यद्यपि कवि जैन संस्कारों में पला हुआ नहीं है फिर भी उन्होंने काव्य, इतिहास, धार्मिक मान्यताओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं परम्पराओं आदि का अनूठा समन्वय किया है।'

43. सत्यरथी – कवि नीरव द्वारा प्रणीत उल्लेखनीय रचना है। सन् 1978 में प्रकाशित हुई। इसमें भगवान महावीर का जीवन प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजित है।

44. जय महावीर – कवि माणकचन्द्र रामपुरिया की महत्त्वपूर्ण कृति है। सन् 1986 में विकास प्रिन्टर्स एंड पब्लिशर्स, बीकानेर (राजस्थान) द्वारा प्रकाशित हुई है। इसमें 16 सर्ग हैं। जीवनपक्ष की प्रधानता है। कवि ने सैद्धांतिक पक्ष को मात्र स्पर्श ही किया है।

45. त्रिशलानंदन महावीर – हिन्दी के प्रसिद्ध हास्य कवि हजारीलालजी 'काका बुन्देलखण्डी' द्वारा 2500 वें वीर निर्वाण वर्ष पर रचित काव्य है। काका साहित्य सदन, सकरार, झाँसी (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित है। इसमें भगवान महावीर के पूर्व तथा वर्तमान जीवनवृत्त का संक्षिप्त 15 शीर्षकों और विविध छंदों में क्रमबद्ध वर्णन है। अनेक स्थलों पर नवीन कल्पनाओं के प्रतीक शब्द चित्र हैं। कवि ने कथानक को सशक्त बनाने में कल्पना की बजाय श्रद्धा - भक्ति से अधिक सहारा लिया है। इस रचना में चंदना से संबंधित 2 चित्र भी दिये हैं। भाव और भाषा की दृष्टि से सफल रचना है।

46. महावीर – हिन्दी में श्री गेंदालालजी सिंघई (अशोकनगर) द्वारा रचित 'महावीर' काव्य का उल्लेख मिलता है। यह अप्रकाशित है। इसका कुछ अंश 'राजमाता' शीर्षक से सन्मति संदेश, महावीर जयंती विशेषांक, अप्रैल - मई 1957, पृ. 36 में प्रकाशित हुआ है।

भगवान महावीर के जीवन वृत्त से संबंधित महाकाव्यों के अतिरिक्त खंडकाव्य एवं स्फुट काव्य परम्परा भी मिलती है। कवि धन्यकुमार जैन 'सुधेश' (नागौद) द्वारा विरचित 'विराग' (वीर निर्वाण संवत् 2476) भावपूर्ण खंडकाव्य है। सन् 1951 में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसमें भगवान महावीर की उत्कृष्ट वैराग्य भावनाएँ 5 सर्गों की 1564 पंक्तियों में सुगठित हैं। इसमें तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक स्थिति, भगवान महावीर का अन्तर्द्वन्द्व तथा अपने माता - पिता से वैराग्योन्मुख होने का तर्क सम्मत संवाद शैली में प्रस्तुति है। कवि उदयचन्द 'वत्सल', दमोह ने 'नाथपुत्र' खंडकाव्य लिखा। 5 सर्गों की यह रचना सम्राट चन्द्रगुप्त साहित्य सदन, जबलपुर द्वारा सन् 1953 में प्रकाशित हुई है। सोहनराज कोठारी कृत 'महावीर : मेरी अनुभूतियों में' (काव्य संग्रह) शिल्पा प्रकाशन, कोटा से सन् 1974 में प्रकाशित हुआ। इसमें 74 विविध शीर्षकों में छोटी - छोटी कवितायें केन्द्रित हैं।

वर्धमान सूरि ने राजस्थानी हिन्दी में 'वीर जिणेसर पारणउ' (43 गाथाएँ), जिनेश्वर सूरि (द्वितीय) ने तथा जयमंगल सूरि ने भी 'महावीर जन्माभिषेक' पद्य रचना 13वीं शती में की। मरुगुर्जर भाषा में अभयतिलक गणि कृत 'महावीर रास' (21 पद्य), जिनभद्रसूरि ने 'महावीर गीत' (सं. 1475) तथा भावसुन्दर ने 'महावीर स्तवन' (15वीं शती) लिखा। राजस्थानी हिन्दी में नन्नसूरि ने 'महावीर सत्ताईस भव' (सं. 1560) लघुकाव्य लिखा, उसका संकलन लालचन्द जैन ने किया, ऐसा उल्लेख मिलता है। विक्रम की 16वीं शताब्दी में भट्टारक शुभचन्द्र ने 'महावीर छन्द' (27 पद्य), अज्ञातकवि ने 'महावीर वीनती' (14 कड़ी, सं. 1520), समरचन्द्र (समरसिंह) ने 'महावीर स्तवन' (सं. 1607), देवीदास द्विज ने 'महावीर स्तोत्र षडारक' (वि.सं. 1611) की रचना की। षडारक यह चैत्यवंदनस्तुति स्तवनादि संग्रह भाग 3 में प्रकाशित हुए। देवचन्द ने 'महावीर 27 भव स्तवन' (सं. 1695 के आसपास), नगर्षि गणि ने 'बडलीमंडनबंध हेतु गर्भित वीर जिन विनति स्तवन' लिखा। 53 कड़ी की यह रचना सं. 1698 से पूर्व की है। इनकी दूसरी रचना 'श्री महावीर स्तवन' (39 कड़ी) है। कवि हंसराज ने 'वर्धमान जिन पंचकल्याणक स्तव' 100 कड़ियों में सं. 1652 से पूर्व लिखा है, जो 'चैत्य आदि संज्झाय' में प्रकाशित हुआ। विक्रम की 17वीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शती में सकलचन्द्र उपाध्याय ने 'वीर वर्धमान जिन बेलि', 'महावीर हींच' तथा 'महावीर जिन स्तवन', समयसुंदर ने 'वीर स्तवन काव्य', लालविजय ने 'विशाल स्तवन काव्य', भट्टारक रत्नकीर्ति ने 'महावीर गीत' लिखे। इसी शती में गुणहर्ष ने 'महावीर निर्वाण' (दीपमालिका महोत्सव) 10 ढालों में लिखा, जो 'चैत्यवंदनस्तुति स्तवनादि संग्रह' भाग 1,2,3 में प्रकाशित है। इसके साथ ही ज्ञानउद्योत कवि की 'महावीर विवाहलो', 'महावीर को नखशिख' (सं. 1760 के लगभग) तथा 'वीर चरित्र बेलि' (सं. 1825) भी उल्लेखनीय है। महीचन्द्र ने 'महावीर पालना' 16 कड़वकों में लिखा।

बीसवीं सदी में खड़ी बोली में भगवान महावीर संबंधी शतक काव्य, चित्रशतक तथा पुष्कल काव्य रचना हुई है। सन् 1939 में पुष्पभिक्षु ने 'वीर स्तुति' लिखी। श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' ने 'वीरायण' (सन् 1952) राधेश्याम कथावाचक की शैली पर लिखा। यह सुधेश साहित्य सदन, नागौद से सन् 1952, सं. 1960 में प्रकाशित हुआ। इस स्फुट काव्य में कलियुग में जनकल्याणकारी संदेश समाहित हैं। श्री खूबचन्द्र जैन 'पुकल' की 'वीर अवतार', सुश्री सुन्दरबाई जैन की 'अहिंसा का पुजारी', श्री रतनचन्द रत्नेश की 'वीरावतार', सुश्री प्रतिभा जैन - अलीगंज की 'सत्य अहिंसा के उन्नायक', श्री चंपालाल सिंघई 'पुरंदर' की 'वीरोदय', लक्ष्मीचन्द रसिक की 'जियो और जीने दो', श्री लक्ष्मीचन्द सरोज की 'सत्य अहिंसा की निधि' आदि ये स्पुट रचनायें सन्मति संदेश - महावीर जयंती विशेषांक, अप्रैल - मई 1957 में प्रकाशित हुई हैं। श्री कमलकुमार 'कुमुद', खुरई के 'महावीर श्री चित्र शतक' काव्य में 249 पद्य हैं, इसे सन् 1974 में पन्नालाल जैन आर्किटेक्ट, दिल्ली ने प्रकाशित किया है। लक्ष्मणसिंह चौहान 'निर्मम', सागर ने मुक्त छंद में 'हे निर्ग्रन्थ', मुनि कन्हैयालाल ने 'महावीर चालीसा', मुनि नवरत्नमल ने 'महावीर दोहावली' की रचना की है। हुकमचन्द जैन 'अनिल' का 'महावीर की मानवता' काव्य सन् 1973 में प्रकाशित हुआ है। सन् 1974 में कुंथुसागर स्वाध्याय सदन प्रकाशन, खुरई (म.प्र.) से रमेश सोनी 'मधुकर' की कृति 'ज्योतिर्मय' (पद्य) प्रकाशित हुई है। वीरेन्द्रकुमार जैन का 'भगवान महावीर' पद्य श्री वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इन्दौर (सन् 1974) से प्रकाशित हुआ है। सन् 1974 में भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से राम भारद्वाज का 'महावीर गीतिका' प्रकाशित हुई है। रमेश रायजादा ने 'मंगलरथ' महावीर शतक काव्य लिखा, जो तीर्थंकर नैतिक शिक्षा प्रकाशन, नजीबाबाद (उ.प्र.) से सन् 1974 में प्रकाशित हुआ है। साध्वी अणिमाश्री की 'महावीर गीतिका' में वंदे मातरम् का स्वर अनुकरणीय है। डॉ. निजामुद्दीन की 'जितेन्द्र महावीर' सरल एवं सुबोध कृति है। श्री वीरेन्द्रप्रसाद जैन की वीर कवितांजलि स्फुट काव्य संग्रह 'वंदना' सन् 1975 में महावीर प्रकाशन, अलीगंज, एटा से प्रकाशित हुआ है। ओमप्रकाश सारस्वत 'द्रोणाचार्य' की 'महावीर वाणी' सन् 1975 में प्रकाशित हुई। नईम ने तीर्थंकर महावीर के सन्दर्भ में नवीनतम काव्यविधा 'नवगीत' की रचना की है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विविध भाषाओं के रचनाकारों ने भगवान महावीर के जीवन से जुड़े उन पक्षों को उद्घाटित किया है, जो सम्पूर्ण मानव जाति की प्रेरणा और मार्गदर्शन का अनन्य स्रोत है। अनेक ग्रंथों की रचनावधि और रचनाकार के विषय में अनिश्चितता के बावजूद भी यह पूरे निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि भगवान महावीर की प्रासंगिकता को लेकर रचनाकार आज भी रचना कर्म में जुटे हुए हैं। भविष्य में भी भगवान महावीर का चरित्र रचनाकारों को जीवन और लेखन संबंधी सभावनाऐं देता रहेगा, ऐसी आशा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर महावीर पर आधारित प्रबंध काव्य संबंधी तालिका

क्र.	भाषा	काव्य	कवि	रचनाकाल व प्रकाशन वर्ष
1	संस्कृत	वर्धमान चरितम्	असग	शक सं. 910
		वर्धमान चरित	भट्टारक सकलकीर्ति	विक्रम सं. 1518
		वर्धमान चरित	भट्टारक पदमनंदि	सं. 1518, 1522 सं. (लिपिकाल)
		वर्धमान चरित	भट्टारक विद्याभूषण	विक्रम की 17वीं शती
		वीरोदय	ब्र. पं. भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागरजी)	ईसा की बीसवीं शती
		मंगलायतनम्	बिहारीलाल शर्मा	सन् 1975 में प्रकाशित
		वीरशर्माभ्युदय	पं. भूरामलजी (शान्तिकुमार)	
2.	प्राकृत	महावीर चरियम्	गुनचन्द्र सूरि	वि.सं. 1139
		महावीर चरियम्	नेमिचन्द्र सूरि	वि.सं. 1141
		महावीर चरित	देव सूरि	---
		महावीर चरित (दुरियराय समीर स्तोत्र)	जिनवल्लभ सूरि	---
3.	अपभ्रंश	हापुराण (वीरजिणिंद चरिउ)	पुष्पदंत (संपा - डॉ. हीरालाल जैन)	शक सं. 887, 1974 ई.
		वड्ढमाण चरिउ	विबुध श्रीधर (संपा - डॉ. राजाराम जैन)	वि.सं. 1190, 1975 ई.
		महावीर चरिउ	अमरकीर्तिगणि	विक्रम की 13वीं शती
		वड्ढमाण कहा	कवि नरसेन	विक्रम की 15वीं शती
		सम्मइजिणचरिउ	रइधू	विक्रम की 15वीं शती
		वड्ढमाण कव्वु	जयमित्र हल्ल	वि.सं. 1550 (लिपिकाल)
		अपभ्रंश महावीर चरिउ	अभयदेव सूरि	---
		महावीर चरिउ	गुणचन्द मुनि	---
4.	कन्नड	वीर वर्धमान पुराण	नागवर्म द्वितीय	1042 ई.
		वर्धमान पुराण	आचण्ण	1195 ई.
		वर्धमान चरित्र	पद्म	1527 ई.
5.	हिन्दी	महावीर चरित (कल्पसिद्धांत भाषित)	प्रथम लक्ष्मण	वि.सं. 1521
		महावीर रास	पद्म	वि.सं. 1609
		महावीर रास	भट्टारक कुमुदचन्द्र	वि.सं. 1609
		भगवान महावीर रास	वर्धमान कवि	वि.सं. 1665
		वर्धमान पुराण	नवलशाह	वि.सं. 1825
		वर्धमान	अनूप शर्मा	सन् 1951 (प्रकाशन वर्ष)
		वीरायण	मूलदास मोहनलाल नीमावत	सन् 1952 (प्रकाशन वर्ष)
		तीर्थंकर श्री वर्धमान	यति मोतीहंस	सन् 1959 (प्रकाशन वर्ष)
		तीर्थंकर भगवान महावीर	वीरेन्द्रप्रसाद जैन	सन् 1959 व 1965 (प्रकाशन वर्ष)
		जय सन्मति	प्रो. हीरालाल पांडे 'हीरक'	सन् 1953 (रचनाकाल), सन् 1959 (प्रकाशन वर्ष)
		महावीर	श्री हरिप्रसादजी 'हरि'	अप्रकाशित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम ज्योति महावीर	धन्यकुमार जैन 'सुधेश'	सन् 1960 (रचनाकाल), सन् 1961 (प्रका. वर्ष)
वीरायन (महावीर मानस महाकाव्य)	रघुवीरशरण 'मित्र'	2500 वी.नि.सं. (सन् 1974) रचनाकाल एवं प्रकाशन वर्ष
चरम तीर्थंकर महावीर	श्रीमद्विद्याचन्द्र सूरि	सन् 1975 (प्रकाशन वर्ष)
बंधन मुक्ति	साध्वी मंजुला	सन् 1975 (प्रकाशन वर्ष)
भगवान महावीर	रामकृष्ण शर्मा	सन् 1975 (प्रकाशन वर्ष)
विश्व ज्योति महावीर	गणेश मुनि शास्त्री	वि.सं. 2031 (रचनाकाल), सन् 1974 (प्रका.वर्ष)
श्री महावीरायण	पं. रतनचन्दजी कौछल	वी.नि.सं. 2502 (रचनाकाल), सन् 1976 (प्रका. वर्ष)
श्रमण भगवान महावीर चरित्र	अभयकुमारजी यौधेय	सन् 1976 (प्रकाशन वर्ष)
तीर्थंकर महावीर	छैलबिहारी गुप्त	सन् 1975 (रचनाकाल), सन् 1976 (प्रका.वर्ष)
सत्यरथी	कवि नीरव	सन् 1978 (प्रकाशन वर्ष)
जय महावीर	माणिकचन्द्र रामपुरिया	सन् 1986 (प्रकाशन वर्ष)
त्रिशलानंदन महावीर	हजारीलाल 'काकावी.नि.सं. 2500 (रचनाकाल)
महावीर	बुंदेलखंडी'	अप्रकाशित
विराग (खंडकाव्य)	श्री गेंदालाल सिंघई	वी.नि.सं. 2476 (रचनाकाल), सन् 1951 (प्रका.वर्ष)
नाथपुत्र (खंडकाव्य)	धन्यकुमार जैन 'सुधेश'	सन् 1953 (प्रकाशन वर्ष)
महावीर : मेरी अनुभूतियों में	उदयचन्द 'वत्सल'	सन् 1974 (प्रकाशन वर्ष)
	सोहनलाल कोठारी, जज. (काव्य संग्रह)	

सन्दर्भ सूची -

1. बाबू छोटलाल जैन स्मृति ग्रंथ, संपादक - पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ, बाबू छोटेलाल जैन अभिनन्दन समिति, कलकत्ता, 1967, पृ. 114.
2. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास (भाग 2), पं. परमानन्द शास्त्री, रमेशचन्द जैन मोटरवाले, राजपुर रोड, दिल्ली, वी.नि.सं. 2500, पृ. 339.
3. तीर्थंकर (मासिक), संपादक - डॉ. नेमीचद जैन, दिसम्बर 1976, पृ. 65.
4. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास (भाग 6), डॉ. गुलाबचन्द चौधरी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1973, पृ. 92.
5. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास (भाग 2), पं. परमानन्द शास्त्री, पृ. 385.
6. जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह (भाग - 2), संपादक - डॉ. परमानन्द जैन शास्त्री, वीर सेवा मन्दिर सोसाइटी, दरियागंज, दिल्ली, 1963, पृ. 115.
7. महावीर युग और जीवन दर्शन, डॉ. हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1977. पृ. 41.
8. जैन साहित्य का वृहद इतिहास (भाग 6), डॉ. गुलाबचन्द चौधरी, पृ. 67.
9. वीर वर्धमान चरितम् : सकलकीर्ति, प्रस्तावना - डॉ. हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1974, पृ. 12.
10. राजस्थान का जैन साहित्य, डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, प्राकृत भारती, जयपुर, 1977, पृ. 210.
11. परम ज्योति महावीर, धन्यकुमार जैन सुधेश, कृति की कथा, पृ. 18.
12. सन्मति संदेश, महावीर जयंती विशेषांक, अप्रैल - मई 1957, पृ. 50.

प्राप्त - 3.2.01

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 27 - 28

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

बौद्ध साहित्य के निगण्ठ नातपुत्त - तीर्थंकर महावीर

■ डॉ. रमाकान्त जैन*

बौद्ध ग्रन्थ **'मज्झिम निकाय'** से विदित होता है कि महात्मा गौतम बुद्ध के समय (ईसा पूर्व छठी शताब्दी में) पूर्वोत्तर भारत में उनके अतिरिक्त 6 अन्य प्रसिद्ध विचारक थे जिनकी प्रतिष्ठा श्रमण - संघ के नेता के रूप में थी। उनके नाम क्रमश: पूरण कास्सथ, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बलिन, प्रकुद्ध कच्चायन, संजय बेलट्ठिपुत्त और निगण्ठ नातपुत्त थे। इन विचारकों में से केवल गौतम बुद्ध, मक्खलि गोसाल और निगण्ठ नातपुत्त की परम्परायें उनके बाद भी चलीं। बुद्ध द्वारा प्रचारित बौद्धधर्म स्वयं अपने देश में तो कुछ समय के लिये लुप्त हो गया, परन्तु देश के बाहर दूर - दूर तक प्रचार पा गया। गोसाल का आजीवक सम्प्रदाय तीन सौ चार सौ वर्ष पर्यंत पूर्वी भारत में प्रभावशाली बना रहा। नातपुत्त की परम्परा अविच्छिन्न रूप से भारत के कोने - कोने में आज तक प्रभावी है और भारत - बाह्य क्षेत्रों में भी उसका समय - समय पर प्रचार हुआ है।

निगण्ठ नातपुत्त जैन परम्परा के चौबीसवें तथा अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर थे जो कि श्रमण संघ के अपने समकालीन नेताओं में ऊपर से वस्त्र त्यागी और अंतर से राग - द्वेष विमुक्त होने के कारण निगण्ठ (निर्ग्रन्थ) और क्षत्रिय जाति के ज्ञातृवंश में जन्म लेने के कारण नातपुत्त (ज्ञातपुत्र) के नाम से विख्यात थे। उनके अनुयायी साधु 'निगण्ठ' (निर्ग्रन्थ) नाम से पुकारे जाते थे और उनके गृहस्थ भक्त 'निगण्ठ सावक' (निर्ग्रंथ श्रावक) कहलाते थे।

दीर्घ निकाय में निगण्ठ नातपुत्त का संघ नेता, अनुयायियों वाले, गुरु, सुविख्यात प्रतिष्ठित दार्शनिक, जनमान्य, अनुभवी सन्यासी, ज्येष्ठ एवं वयोवृद्ध के रूप में परिचय दिया गया है। महात्मा बुद्ध ने अपने संवादों में जहाँ कहीं भी उनका उल्लेख किया है, बड़े आदर के साथ किया है। यह आश्चर्य की बात है कि यद्यपि निगण्ठ नातपुत्त और महात्मा बुद्ध समकालीन थे तथा एक ही प्रदेश और एक ही परम्परा के विचारक थे, तब भी उनमें परस्पर कभी प्रत्यक्ष भेंट होने का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु इन दोनों ही विचारकों के जीवन में ऐसे कितने ही प्रसंग आये जब कि उन्हें एक दूसरे के विचार जानने और उन पर विचार करने की उत्सुकता हुई। बौद्ध ग्रन्थों से विदित होता है कि निर्ग्रन्थ साधुओं में दीर्घ तपस्वी और सत्यक तथा जैन श्रावकों में राजकुमार अभय, सेठ उपालि और लिच्छवि सरदार सीह (अपरनाम सिंह सेनापति) के माध्यम से यह विचार - विनिमय हुआ।

बौद्ध साहित्य से निगण्ठ नातपुत्त के अनेक शिष्यों का पता चलता है। **'विशाखवत्थु'** में बौद्ध श्राविका विशाखा के श्वसुर सेठ मृगार को उनका पक्का भक्त बतलाया गया है। 'अभयराज सुत्त' में महात्मा बुद्ध के भाई देवदत्त का भी उनसे प्रभावित शिष्य - सम होने का उल्लेख है। वैशाली के लिच्छवि उनके पक्के अनुयायी थे। इसका भी उल्लेख उक्त साहित्य में है।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार महात्मा बुद्ध के जीवनकाल में निगण्ठ नातपुत्त और उनके निगण्ठ अनुयायियों के भ्रमण और कार्य का क्षेत्र मुख्यतया अंग - मगध. वज्जि - लिच्छवि, काशी - कोसल और वत्स इत्यादि राज्य थे तथा इन राज्यों में भी उनकी गतिविधि के मुख्य केन्द्र राजगृह, नालन्दा, वैशाली और श्रावस्ती थे। उस समय उक्त स्थानों में से राजगृह अंग - मगध राज्य की, वैशाली लिच्छवियों की और श्रावस्ती काशी - कोसल राज्य की राजधानी थी। वैशाली के निकट कुण्डग्राम तो महावीर की जन्मभूमि ही थी, राजगृह के विपुलाचल पर उन्होंने

* ज्योति निकुंज चार बाग रोडवेज बस स्टेशन के पीछे, लखनऊ - 226 004 (उ.प्र.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था और सर्वाधिक वर्षावास भी उन्होंने उस नगर में किये थे तथा उनका निर्वाण पावा नगरी में हुआ था।

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि महात्मा बुद्ध के समसामयिक विचारकों में आत्मा और लोक के सम्बन्ध में विभिन्न कल्पनाएं थीं। दीर्घ निकाय के **'ब्रह्मजाल सुत्त'** के अनुसार निगण्ठ नातपुत्त आत्मा और लोक को शाश्वत मानते थे। उन्हें चातुर्याम संवरवादी भी बतलाया गया है, क्योंकि वह ब्रह्मचर्य के साथ-साथ अपने से 250 वर्ष पूर्वगामी 23वें तीर्थंकर पार्श्व द्वारा उपदिष्ट अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह - इन चार यामों का स्वयं पालन करते थे तथा दूसरों को भी उनका पालन करने का उपदेश देते थे। उनका कहना था कि इनका पालन करने से संसार में पूर्ण सुख-शान्ति हो सकती है। उन्होंने तपस्या करने पर बल दिया और कहा कि सांसारिक सुखों की अपेक्षा तपस्या में अधिक सुख है क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो मगध के राजा बिम्बिसार-श्रेणिक तपस्वियों की अपेक्षा अधिक सुखी होते। वे 'परोपदेश कुशल' नहीं थे, अपितु केवल उन्हीं बातों को करने का लोगों को सरल-सुबोध जनभाषा में उपदेश देते थे जिन्हें कि वह स्वानुभव के आधार पर लोकहितकारी समझते थे।

बौद्ध ग्रन्थों से यह भी स्पष्ट है कि निगण्ठ नातपुत्त अपने समय के उच्च कोटि के तार्किकों में थे। उनकी तर्क एवं चिन्तन प्रणाली वैज्ञानिक ढंग की थी। उनका कहना था कि किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में कोई मत निर्धारित करने से पहले अथवा किसी विषय में कोई निर्णय लेने के पूर्व उसके सब पहलुओं - अच्छाई-बुराई, पक्ष-विपक्ष, लाभ-हानि पर पूरी तरह विचार कर लेना चाहिये। उनकी यह चिन्तन प्रणाली स्याद्वाद के नाम से प्रसिद्ध है। चूंकि उन्होंने चिन्तन के पहलुओं को सात वर्गों में विभाजित किया था, अत: इसका 'सप्तभंगी न्याय' के नाम से भी उल्लेख किया गया है।

'मज्झिम निकाय' तथा **'अंगुत्तर निकाय'** में यह उल्लिखित है कि निर्ग्रन्थ साधु अपने गुरु निगण्ठ नातपुत्त को 'सर्वज्ञ' बतलाते थे। उनकी यह लोक प्रसिद्धि थी कि चलते हुए या खड़े रहते हुए, सोते हुए या जागते हुए - हर स्थिति में उनकी ज्ञान दृष्टि कायम रहती थी। इन्हीं ग्रन्थों में यह भी बतलाया गया है कि निगण्ठ नातपुत्त का कहना था कि मनुष्य जिन सुख-दु:खों का अनुभव करता है वे उसके पूर्व कर्मों के फल हैं। अत: तपस्या द्वारा पूर्व दुष्कर्मों के फल को नष्ट करके तथा वर्तमान में कोई अन्य दुष्कर्म न करके ही मनुष्य भविष्य में आवागमन के चक्र से छुटकारा पा सकता है। उनका सिद्धान्त था कि जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। उनका यह कर्मवाद का सिद्धान्त मनुष्यों को न केवल उनके सुख-दु:खों के लिये उत्तरदायी ठहराने वाला है, अपितु उन्हें सत्कर्म करने के लिये प्रेरणा देने वाला भी है। उनका यह सिद्धान्त किसी भी प्राणी को अकर्मण्य या निराशावादी बनाने वाला नहीं है, अपितु सब में उत्साह और आशा का संचार करने वाला है। यह सिद्धान्त इतना युक्तिसंगत और सार्वकालीन है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में भी इसकी वही उपादेयता है जो आज से 2600 वर्ष पूर्व निगण्ठ नातपुत्त महावीर के समय में थी।

यही कारण है कि आज भी, ई.पू. 599 में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को वर्तमान बिहार प्रदेश में वैशाली के समीपस्थ कुण्डग्राम में जन्म लेने वाले, **'जीयो और जीने दो'** में विश्वास करने वाले, **'आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'** पर आचरण करने वाले और अपना जीवन **'सर्वसत्वानां हिताय, सर्वसत्वानां सुखाय'** अर्पण करने वाले इस महामानव वर्द्धमान महावीर के प्रति असंख्य जन श्रद्धा से नत मस्तक हैं।

प्राप्त - 17.3.01

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 29 - 34

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

वर्धमान चरितम्, वर्धमानस्वामिचरित्तम्

■ डॉ. संगीता मेहता*

मुनि पद्मनन्दि प्रणीत 'वर्धमान चरितम्' नामक संस्कृत काव्य पद्यमय है। श्रीपादशास्त्री हसूरकर विरचित 'वर्धमानस्वामिचरितम्' एक संस्कृत गद्यकाव्य है। काव्य सौंदर्य की दृष्टि से उत्कृष्ट तथा तीर्थंकर महावीर के जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं शिक्षाओं की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ये दोनों काव्य अद्यतन अप्रकाशित हैं। दोनों काव्यों की पांडुलिपि के प्रथम एवं अंतिम पृष्ठों की छाया प्रतियाँ तथा संक्षिप्त समीक्षा यहाँ प्रस्तुत है।

वर्धमानचरितम् (कवि पद्मनन्दि) -

मुनि पद्मनन्दि कृत 'वर्धमानचरितम्' ईस्वी सन् की 14 वीं शताब्दी का एक लघु संस्कृत काव्य है। गुणभद्राचार्य कृत उत्तर - पुराण इस काव्य का उपजीव्य है। पौराणिक इतिवृत्त का आश्रय लेकर कवि पद्मनन्दि ने तीर्थंकर महावीर के पूर्व तथा वर्तमान भव का पारम्परिक शैली में काव्यात्मक वर्णन किया है। सतत प्रयासोपरान्त शोधकर्त्री को इसकी दो पांडुलिपियाँ प्राप्त हुई -

1. **प्रथम पांडुलिपि** - दिगम्बर जैन आदिनाथ मन्दिर, बूंदी (राज.) के ग्रन्थागार में इसकी एक प्रति संरक्षित है। तदनुसार वर्धमानचरितम् की पत्र संस्खा 35 है। इसका आकार 9½ x 5 " है।

2. **द्वितीय पांडुलिपि** - दिगम्बर जैन शास्त्र भंडार, ईडर (अहमदाबाद) में संरक्षित है। इसकी पत्र संख्या 45 है तथा इसका आकार 9½ x 5 " है।

उपर्युक्त दोनों पांडुलिपियों के वर्ण्यविषय, श्लोक संख्या, ग्रंथ नाम तथा ग्रंथकार के नाम में पूर्ण समानता है। दोनों में अन्तर केवल यह है कि बून्दी से प्राप्त पांडुलिपि में ग्रंथ का विभाजन परिच्छेदों में किया है तथा ग्रंथ के आरम्भ में 'ॐ नमः परमात्मने' और अन्त में 'समाप्त' शब्द अंकित है। इसके विपरीत ईडर से प्राप्त पांडुलिपि में ग्रंथ का विभाजन सर्गों में है तथा ग्रंथ के आरम्भ में 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' और अन्त में 'शुभं भवतु' वाक्य अंकित है। बून्दी की पांडुलिपि में पत्र संख्या 35 है तथा अक्षर अपेक्षाकृत छोटे हैं, जबकि ईडर की पांडुलिपि में पत्र संख्या 45 है तथा अक्षर अपेक्षाकृत बड़े हैं। प्रतिलिपिकार के प्रमाद के कारण ईडर से प्राप्त पांडुलिपि में अनेक अशुद्धियाँ विद्यमान हैं, जबकि बून्दी से प्राप्त पांडुलिपि शुद्ध है।

वर्धमानचरितम् के प्रथम परिच्छेद में 359 पद्य हैं। अनुष्टुप् छंद में रचित प्रस्तुत काव्य वर्धमान महावीर के चरित से सम्बद्ध है। 'विजय निर्वाणगमन' नाम्नक प्रथम परिच्छेद के प्रथम 6 पद्यों में मंगलाचरण किया गया है। पद्य 7 से 24 तक चरितनायक के माता - पिता का वर्णन तथा 25 से 40 पद्य तक माता के स्वप्न तथा दोहद का वर्णन है। पद्य 41 से 70 तक नायक (महावीर) के जन्म, शैशव, नामकरण आदि का वृत्त वर्णित है। पद्य संख्या 71 से 106 तक चरितनायक के वैराग्यवृत्ति, दीक्षाग्रहण, उग्रतपश्चरण एवं कैवल्य प्राप्ति का वृत्तान्त वर्णित है। 107 से 115 तक इन्द्रभूति गौतम तथा देवेन्द्र संवाद वर्णित है।

* सहायक प्राध्यापक - संस्कृत, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर - 452 017

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

116 से 129 तक इन्द्रभूति गौतम तथा चरितनायक (वर्धमान) का संवाद है। 130 से 341 तक इन्द्रभूति गौतम तथा 500 ब्राह्मण पुत्रों द्वारा दीक्षा ग्रहण तथा इन्द्रभूति गौतम पर चरितनायक के प्रभाव का वर्णन है। पद्य 142 से अंत तक तीर्थंकर वर्धमान के निर्वाणगमन का वर्णन है।

द्वितीय परिच्छेद में 1 से 170 पद्य तक वर्धमान महावीर के पूर्व भवों का चित्रण किया गया है। 171 से 187 तक वर्धमान महावीर के उपदेशों से प्रभावित चतुर्विध संघ के प्रमाण का निरूपण तथा निर्वाण प्राप्ति का वर्णन है। अन्त में 18 पद्यों में ग्रन्थकार मुनि पद्मनन्दि का आत्मवृत्त वर्णित है। तदनुसार इनका नाम मनसुख था तथा दीक्षोपरान्त ये पद्मनन्दि के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसमें कवि ने अपने वंश वृत्त का भी उल्लेख किया है।[1] तदनुसार इनके पितामह का नाम सोमदेव तथा पितामही का नाम प्रेमा था। पिता का नाम हरिराज तथा माता का नाम सातो था।

'वर्धमानचरितम्' वर्धमान महावीर के कल्पस्थायी उदात्त चरित से विभूषित होने के कारण शाश्वत साहित्य की कोटि में परिगणना के योग्य हैं। उदात्तचरित के अनुरूप यहाँ शान्तरस[1]का अत्यन्त रमणीय परिपाक हुआ है। त्रिपृष्ठ एवं अश्वग्रीव के युद्ध प्रसंग में वीररस[2] की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। रौद्र[3], श्रृंगारादि[4], रस अंग रूप में विद्यमान है। यद्यपि इस काव्य में प्रसादगुण[5] की व्यापकता है तथापि माधुर्य[6] और ओजगुण[7] की स्थिति भी यत्र-तत्र दिखाई देती है। वैदर्भी रीति[8] प्रधान इस काव्य में गौड़ी[9] व पांचाली[10] रीति का भी अनेकशः प्रयोग हुआ है। यत्र-तत्र उपमा[11], उत्प्रेक्षा[12], अनुप्रासादि[13] अलंकारों के सहज प्रयोग से काव्य सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है। उपमा कवि का प्रिय अलंकार है। अनुष्टुप् बहुल काव्य में यत्र-तत्र शार्दूलविक्रीड़ित[14], स्रग्धरा[15], हरिणी[16], मालिनी[17] आदि छन्द भी प्रयुक्त हैं। इस काव्य की भाषा प्रासादिक तथा शैली प्रवाहपूर्ण है।

धर्म तथा आध्यात्म जैसे विषय तात्त्विक विषयों का अत्यन्त सरल भाषा में विवेचन किया गया है। वर्धमान महावीर के चरित्र के माध्यम से सांसारिक विषयासक्ति से मुक्ति प्रदान करना इस रचना का मुख्य उद्देश्य है। भगवान महावीर के लोकोपकारी माहात्म्य से मण्डित यह काव्य चरित्र-चित्रण, भाव, भाषा और शैली आदि की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना है। इसमें इतिहास और कल्पना का मंजुल मणिकांचन संयोग है।

श्री वर्धमानस्वामिचरित्तम् (श्रीपाद शास्त्री हसूरकर) -

'श्रीवर्धमानस्वामिचरित्तम् नामक गद्यकाव्य के प्रणेता श्रीपाद शास्त्री हसूरकर बीसवीं शताब्दी के मूर्धन्य गद्यकार हैं। इनका जन्म 13 जून 1888 ई. में महाराष्ट्र के 'हसूरचम्पू' नामक गाँव में हुआ।[18] शैक्षणिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में की गई विशिष्ट सेवाओं के कारण होलकर महाराज ने 24 नवम्बर 1923 ई. में 'पण्डितरत्न' की पदवी से अलंकृत किया।[19] जैन संस्कृत गद्य साहित्य के विकास में अपना अंशदान कर 20 अप्रैल 1974 को धारा नगरी में दिवंगत हो गये। अजैन होते हुए भी 'श्रीवर्धमास्वामिचरित्तम्' नामक गव्य काव्य का प्रणयन कर जैन संस्कृत साहित्य के विकास में शास्त्रीजी ने स्पृहणीय योगदान किया।

'श्रीवर्धमानस्वामिचरित्तम' में तीर्थंकर महावीर का आजन्म मोक्षप्राप्तिपर्यन्त जीवनवृत्त एवं लोकोपयोगी अलौकिक कार्य माहात्म्य का वर्णन है। 107 पृष्ठों में लिखित इस काव्य में 12 प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण 'उपोद्घात' के अन्तर्गत क्रमशः सभी धर्मों के मान्य तत्त्वों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का निरूपण, जैन धर्म के स्वरूप का विवेचन तथा संक्षेप में 24 तीर्थंकरों का वृत्त वर्णित है। ''पितृचरित' नामक द्वितीय प्रकरण में वर्धमान स्वामी के पिता सिद्धार्थ एवं माता त्रिशला का जीवनवृत्त वर्णित है। तृतीय से लेकर एकादश प्रकरण में श्री वर्धमान के जन्म, बाललीलायें, वैराग्य, दीक्षा, उग्रतपश्चरण, तप काल में उत्पन्न विघ्नों के परिहार, शमातिरेक, केवलज्ञान, उपदेश एवं मोक्षप्राप्ति का वर्णन है। अन्तिम द्वादश प्रकरण 'उपसंहार' में मानवजाति के कर्त्तव्यों का विवेचन, शमादि की आवश्यकता तथा पंच महाव्रत की योग्यता का वर्णन है। भाव एवं भाषा की दृष्टि से यह गद्यकाव्य अत्यंत उत्कृष्ट तथा तीर्थंकर महावीर के जीवन तथा उनके उदात्त गुणों का परिचायक है।

सन्दर्भ स्थल -

1. वर्धमानचरितम्, कवि पद्मनन्दि, 1/219, 355; 2/12 - 14, 71, 92.
2. वही , 1/197 - 200, 211, 214, 313 - 326.
3. वही , 1/276, 347, 352.
4. वही , 1/243.
5. वही , 1/95.
6. वही , 1/219
7. वही , 1/101, 197, 249, 313 - 326.
8. वही , 1/219, 355, 2/12 - 14, 92.
9. वही , 1/101, 248, 249, 313; 2/155.
10. वही , 2/183, 184.
11. वही , 1/101, 126, 168, 344; 2/134.
12. वही , 1/118.
13. वही , 1/86, 359; 2/128, 150.
14. वही , 1/50, 43; 2/93, 144, 184.
15. वही , 2/72.
16. वही , 1/253.
17. वही , 1/256.
18. डॉ. केदारनारायण जोशी (शोध प्रबन्ध) श्री पादशास्त्री हसूरकर की रचनाओं का समालोचनात्मक अध्ययन, पृ. 59 - 60.
19. होल्कर राज्य अर्द्धवार्षिक अधिकारी सूची, 1 अक्टोबर 1935, पृ. 114.

प्राप्त - 19.2.01

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

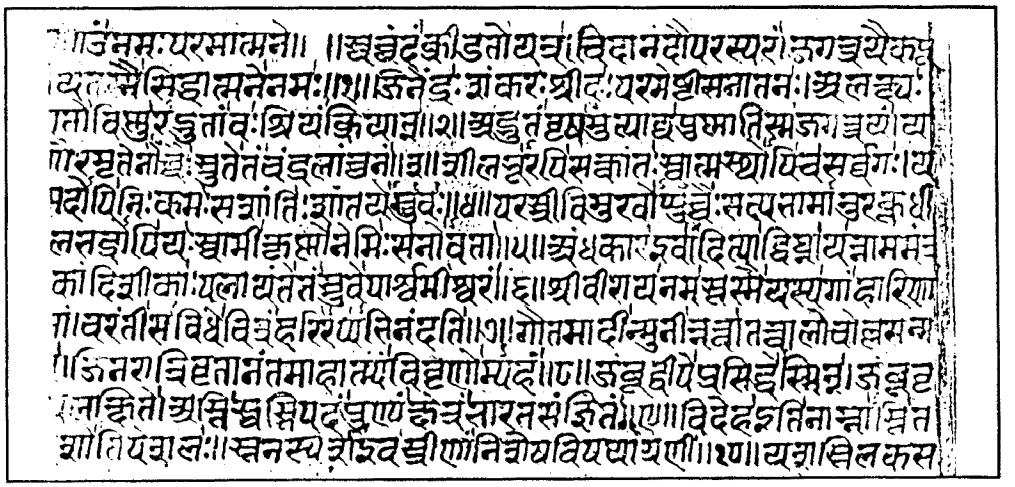

मुनि पद्मनन्दि कृत वर्धमान चरितम् की बूँदी से प्राप्त पांडुलिपि का प्रथम पृष्ठ

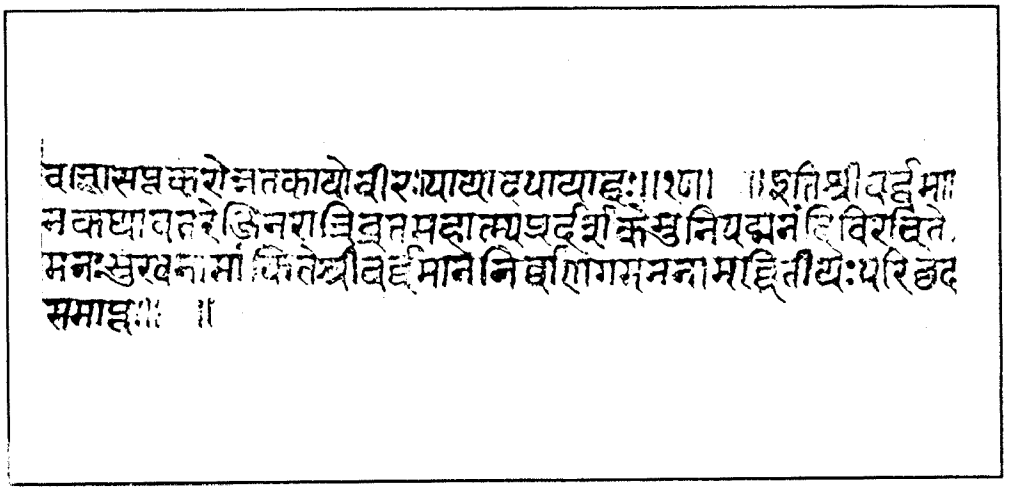

बूँदी पांडुलिपि का अन्तिम पृष्ठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

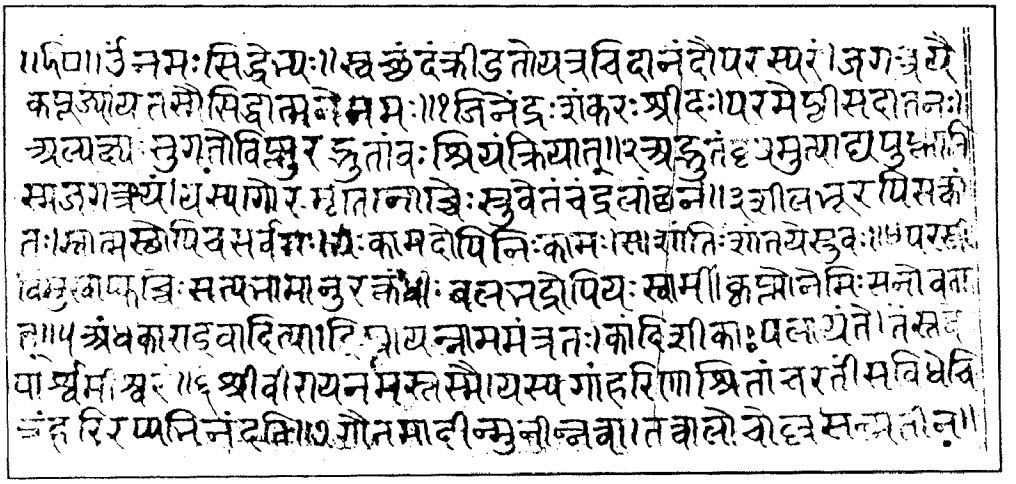

मुनि पद्मनन्दि कृत वर्धमान चरितम् की ईडर से प्राप्त पांडुलिपि का प्रथम पृष्ठ

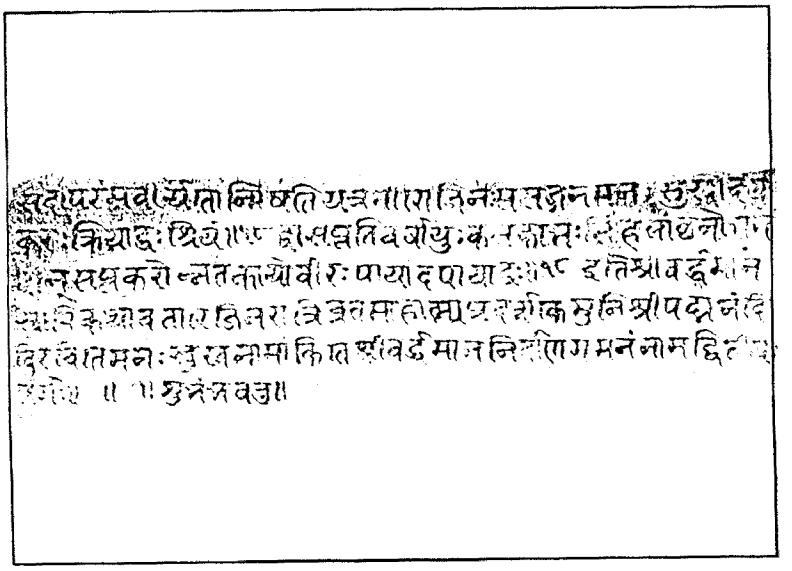

ईडर से प्राप्त पांडुलिपि का अन्तिम पृष्ठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

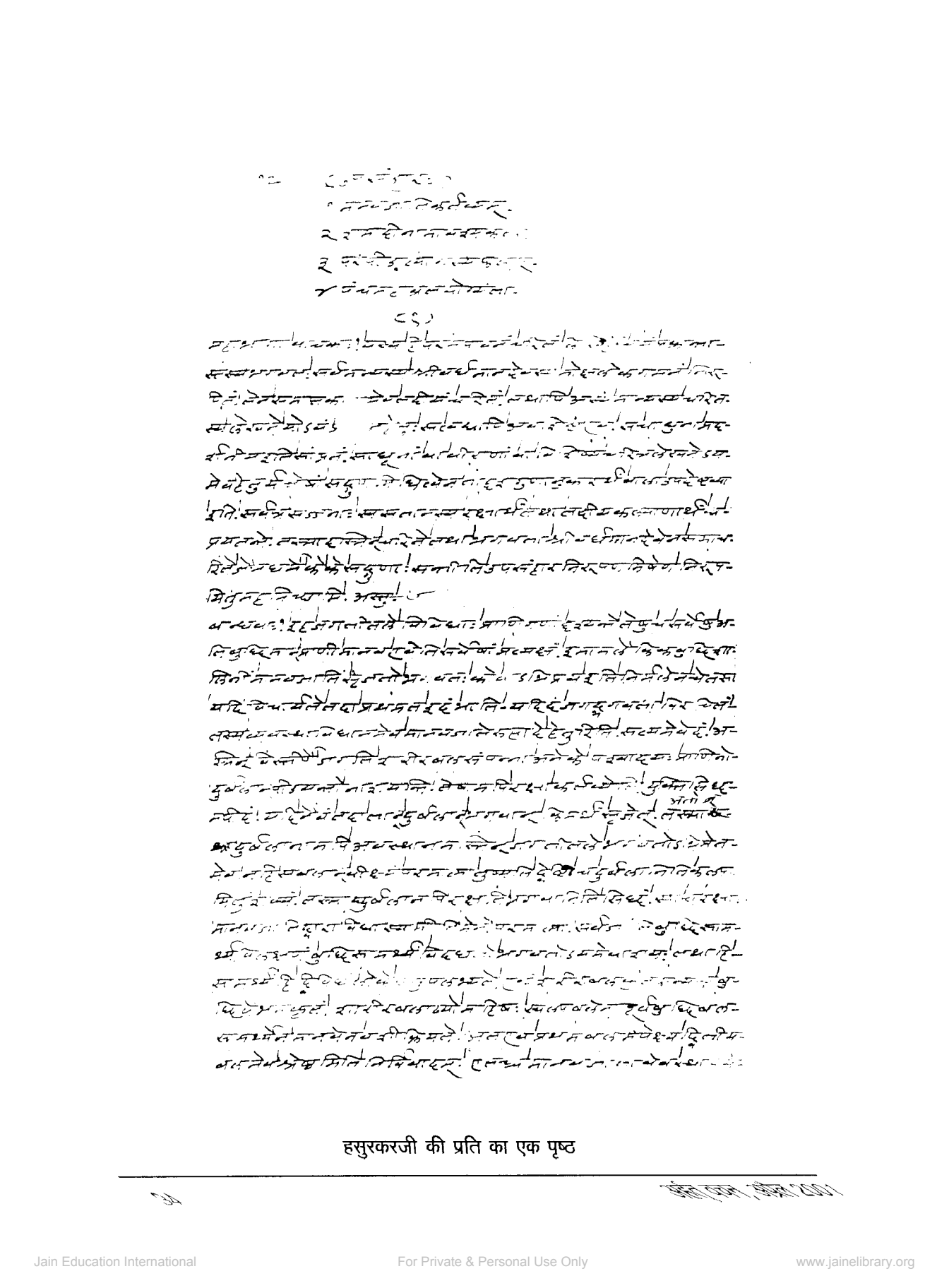

हसुरकरजी की प्रति का एक पृष्ठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 35 - 38

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान शिव एवं विष्णु के अवतार - ऋषभदेव : एक चिंतन

■ डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल*

वैदिक दर्शन और जैनधर्म के मूल सिद्धान्त और उनके महापुरुषों का जीवन चरित्र एक - दूसरे से घुला - मिला है जिसके मध्य भेद - रेखा खींचना बड़ा कठिन है। जैन दर्शन में जो बात सिद्धान्त रूप से कही गई है वही बात वैदिक धर्म में कथानकों और प्रतीकों के रूप में स्वीकार की गई है। पहले दार्शनिक सिद्धान्त जनमानस को सहज ग्राह्य बनाने हेतु कथानकों का सहारा लिया जाता था। प्रतीत होता है कि काल - प्रवाह में कथानक ही कथा - पुराण बनकर रह गये और उनके भीतर निहित तत्त्व - दर्शन गायब हो गया। उदाहरण के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) के स्वरूप को ही लें। ब्रह्मा सृष्टि का कर्ता, विष्णु सृष्टि का पालक और शिव सृष्टि के संहारक के रूप में निरूपित किये गये हैं। वस्तुत: यह जन्म, जीवन और मृत्यु, इन तीनों के प्रतीक के रूप में सम्पूर्ण वस्तु - स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसकी व्याख्या जैनदर्शन में वस्तु के सत् स्वरूप द्वारा की गई है। परम ब्रह्म परमात्मा इन तीनों शक्तियों के ऊपर है।

उत्पत्ति, स्थिरता, विनाश, वस्तु स्वरूप की ये तीन अवस्थाएँ हैं। ये तीनों अवस्थाएँ विश्व - परिवर्तन का कारण हैं, जो प्रत्येक जीव में सदैव विद्यमान रहती हैं। बालक जन्म लेता है, वृद्ध होता है और एक समय के बाद मृत्यु को प्राप्त होता है। इस जीवनकाल में उसके शरीर में अनेकानेक अवस्थायें बदलती रहती हैं। बालक से वृद्धपना एकदम से नहीं हो जाता है। नित - निरन्तर परिवर्तनों का ही वह परिणाम है। इसमें ब्रह्मा उत्पत्ति के प्रतीक हैं, विष्णु जीवन के प्रतीक हैं और वस्तु की अवस्था में परिवर्तन शिव के प्रतीक है। विज्ञान ने वस्तु स्वरूप की इन तीन अवस्थाओं को न्यूट्रान, इलेक्ट्रान एवं प्रोट्रान के रूप में स्वीकार किया है। अंग्रेजी में 'गाड' शब्द की उत्पत्ति में यही तीनों शक्तियाँ निहित हैं। इसमें 'जी' जनरेटर, 'ओ' ऑपरेटर एवं 'डी' डिस्ट्रक्टर का संक्षिप्त रूप है। जैन दर्शन के अनुसार वस्तु का सत् - स्वरूप सृजन, संहार एवं स्वरूप - के - सातत्व का सूचक है जो प्रकृति - परिवर्तन को अपने में समाविष्ट किये हैं।

पुराणों में विष्णु के 24 अवतारों को मान्य किया गया है। ये अवतार वस्तुत: जीवन, विनाश एवं स्थिरता के सूचक हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की तीन शक्तियाँ पृथक - पृथक रूप में कार्य नहीं करती हैं। वे परस्पर एक - दूसरे से सम्बद्ध हैं एवं वस्तु स्वरूप की प्रतीक शक्तियाँ हैं। व्यावहारिक जीवन में भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। जहाँ जन्म है, वहाँ जीवन है और मृत्यु भी।

अवतार - वाद की समीक्षा करने पर भी इस बात की पुष्टि सहज ही हो जाती है। भागवत् महापुराण के पंचम स्कन्ध एवं वेदों में नाभिपुत्र ऋषभदेव को विष्णु का आठवाँ अवतार मान्य किया है। विष्णु - पुराण, मार्कन्डेय - पुराण, प्रभाष - पुराण, ऋग्वेद, शिवपुराण आदि में ऋषभदेव को जैनधर्मका प्रथम तीर्थंकर मान्य किया है। महाशिवपुराण में उन्हें शिव के 28 योगावतारों में गिना गया है।[1] उसमें ऋषभावतार को निम्नस्वरूप में ही स्वीकार किया गया है -

इत्थं प्रभाव ऋषभोवतार शंकरस्य मे
सतां गतिदीनंबन्धुनर्वभ: कथितस्तवन: (47)

अर्थात् इस प्रकार ऋषभावतार होगा जो मेरे लिये शंकर/शिव है, वह मानवों के

* बी - 369, ओ.पी.एम. कालोनी, अमलाई पेपर मिल, अमलाई - 484 117

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिये दीनबन्धु के रूप में नवमें अवतार होंगे, उनका स्तवन करो।

प्रभाष पुराण के अनुसार कैलाश और विमल पर रमण करने वाले ऋषभ जिनेश्वर का आना अवतार हैं, वे सर्वज्ञ और शिव हैं।

'कैलाशो विमलेरम्मे वृषभोयं जिनेश्वर:
चकार स्वावतारं च सर्वज्ञ: सर्वज्ञ: शिव:'[2]

जैन अचार्य जिनसेन ने ऋषभदेव को शिव के रूप में स्वीकार किया है। इस संबंध में निम्न पद उल्लेखनीय है -

'त्वं ब्रह्मा परमज्योति स्वत्वं प्रभुष्णु रजोरजा:
त्वमादिदेवो देवानाम अधिदेवो महेश्वर:'[3]

अर्थात् हे ऋषभदेव! आप ब्रह्मा हैं, परम ज्योति स्वरूप हैं, समर्थ हैं, पाप-रहित हैं, प्रथम तीर्थकर हैं और देवों के भी अधिदेव महेश्वर (शिव) हैं।

जैन साहित्य के महाग्रन्थ धवला, भक्तामर स्तोत्र आदि में भी भगवान ऋषभदेव को त्रिशूलयुक्त शिव के रूप में अलंकृत कर स्वीकार किया है।[4] जिनेन्द्र रूद्राष्टक में पद 1 से 7 तक उनकी रूद्र के रूप में स्तुति की गई है जिसका उल्लेख 'पउम परिउ' के मंगलाचरण में हुआ है।[5]

जैन मान्यतानुसार जब ऋषभदेव गर्भ में आये तब स्वर्णादि की वर्षा हुई थी। इस कारण आचार्य जिनसेन ने महापुराण में ऋषभदेव को हिरण्यगर्भ कहा[6] ऋग्वेद में भी कहा गया है कि पहले हिरण्यगर्भ हुए, वह प्राणी मात्र के स्वामी थे। ऋग्वेद की ऋचा इस प्रकार है -

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषाविधेय॥[7]

महाभारत शान्ति पर्व[8] में हिरण्यगर्भ को योग का वक्ता स्वीकारते हुए कहा है - **'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता: नान्य: पुरातन:'।** अर्थात् हिरण्यगर्भ योगमार्ग के प्रवर्तक हैं अन्य कोई उनसे पुरातन नहीं। महापुराण एवं श्रीमद्भागवत के अनुसार ऋषभदेव महान योगी थे। इससे यह ध्वनित होता है कि ऋषभदेव और हिरण्यगर्भ एक ही महापुरुष थे।

ऋषभदेव को ऋग्वेद में वृषभ, रूद्र, शिश्नदेव और महादेव के नामों से स्वीकार किया गया है -

'त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीती महादेवो यर्त्यानाविवेश॥[9]

अर्थात् मन, वचन, काय तीनों योगों से संयत ऋषभदेव ने घोषणा की कि महादेव मर्त्यों में आवास करते हैं। ऋग्वेद में वात रसना, मुनियों की चर्चा वस्तुत: श्रमण-ऋषियों की ही चर्चा है जिसके प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव थे। अथर्ववेद में ऋषभदेव को प्रजापति परमेष्ठि, ब्रह्मा[10] तथा सूर्य के समान तेजस्वी एवं प्रथम अहिंसक प्राणियों का राजा कहा है।[11] बौद्ध ग्रन्थ आर्यमंजूश्री मूलकल्प में भी नाभिपुत्र ऋषभदेव और उनके पुत्र भरत को भारत के प्राचीनतम सम्राटों में गिना है और इस बात की पुष्टि की है कि ऋषभदेव जैन धर्म के आप्तदेव थे और उन्होंने हिमालय में सिद्धि प्राप्त की थी।

वाराह पुराण में नाभिराय और मरूदेवी के पुत्र ऋषभदेव तथा उनके भरतादि सौ पुत्रों का कथन आया है। ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को हिमालय के दक्षिण वाला क्षेत्र दिया था। भरत के नाम पर ही भारतवर्ष पड़ा।[12] लिंग पुराण[13] में भी उक्त कथन की पुष्टि हुई है। स्कन्ध पुराण[14] में ऋषभदेव के प्रताप एवं वैभव का वर्णन है। वायु पुराण[15] एवं ब्रह्माण्ड पुराण[16] में ऋषभदेव के सम्बन्ध में कई पद्य हैं। कूर्मपुराण[17] में नाभि पुत्र ऋषभदेव को क्रांतिकारी के रूप में दर्शाया है। उनके भरतादि सौ पुत्र थे। अग्नि पुराण[18]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में महाराजा नाभि एवं उनके पुत्र ऋषभ का वर्णन है। इसके अनुसार ऋषभ ने अबने पुत्र भरत को राज्य देकर शालिग्राम से मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार ऋषभदेव वेद - पुराण स्वीकृत पुरुष हैं।

इस प्रकार ऋषभदेव को प्रजापति ब्रह्मा, रूद्र एवं शिव के रूप में सर्वत्र स्वीकार किया गया है। विष्णु के अष्टम/नवम अवतार तो वे निर्विवाद रूप से हैं ही। रामायण में भगवान राम का यह कथन कि **'कोउ नहिं शिव समान प्रिय मोरे'** भी महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने शिव को अपना अत्यन्त प्यारा निरूपित किया है। इस कथन में भी विष्णु - अवतारी राम एवं शिव में एकत्व का दर्शन होता है। समग्र रूप से भगवान ऋषभदेव वस्तुस्वरूप की तीन शक्तियों अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति व नाश के प्रतीक रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वरूप हैं और आद्य पुरुष, आदि परमेश्वर भी हैं।

एक ही व्यक्तित्व का भिन्न - भिन्न निरूपण ऋषभदेव एवं शिव के रूप में किया गया प्रतीत होता है क्योंकि दोनों का जन्म, जीवन, साधना, साधना - क्षेत्र कैलाश पर्वत है। दोनों का चिन्ह वृषभ (बैल) है जिसे नादिया कहते हैं। शिव त्रिशूलधारी हैं। ऋषभदेव भी सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप त्रिशूलधारी हैं। दोनों की प्राचीन मूर्तियों में त्रिशूल एवं बैल का चिन्ह अंकित है जिसकी पुष्टि मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा के अवशेषों से होती है। शिव ने त्रिशूल से अन्धकासुर का संहार किया। ऋषभदेव ने त्रिरत्नरूप शिव - मार्ग से मोह रूप अंधकासुर का वध किया। ऋषभदेव अनंतज्ञान एवं आनंद के धनी हैं। ऋषभदेव के समान शिव स्वयं आनन्द स्वरूप हैं। शिव सूर्य के धारक हैं जो अज्ञान - विनाश होने का प्रतीक है। वे ज्ञान रूपी तृतीय नेत्र के धारक हैं। ऋषभदेव भी पूर्ण ज्ञान के सूर्य एवं सर्वज्ञ रूप तृतीय नेत्र के धारक हैं। ऋषभदेव एवं शिव दोनों ही जटाधारी हैं। अनंत ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् ऋषभदेव ने ज्ञान - गंगा प्रवाहित कर जगत के जीवों को मोक्ष मार्ग बताया, यही भाव - बोध शिव की जटाओं से गंगा अवतरण में छिपा है। ऋषभदेव ने मन, वचन, काय रूप त्रियोग से राग - द्वेष का नाश कर शिवत्व प्राप्त किया था। शिव के ललाट पर शोभित त्रिपुंड इसी त्रियोग का प्रतीक है।

जन्म, जरा, मृत्यु यह तीनों दुःख रूप हैं। इसके निवारण हेतु जैन पूजा पद्धति में जल समर्पित किया जाता है। शिव आराधना में भी जल समर्पण का विशेष स्थान है। शिव ने विषपान किया था। इसका रहस्य भी ऋषभदेव की योगचर्चा में छिपा है। जल के एक सौ एक नामों में अमृत और विष भी है। शिवत्व की प्राप्ति हेतु शुभ - अशुभ भाव रूप विभावी शक्तियों को नाश किया जाता है जो विषपान जैसा है। यही विभावी शक्तियाँ मनुष्य को निरन्तर आकुलतामय बनाये रखती है जो भूत पिशाचों की प्रतीक है। शिव ने इन्हें अपने वश में कर लिया था। ऋषभदेव ने भी शुभाशुभ भावों पर विजय प्राप्त कर शुद्धात्म स्वरूप प्राप्त किया था।

भगवान ऋषभदेव ने काय - योग द्वारा मन को आत्म सम्मुख कर आत्म - साधना की थी। काय - योग में मेरूदण्ड की साधना का महत्वपूर्ण स्थान है। यह तैंतीस पर्वो से बना है जिसमें पर्वत हो, उसे पर्व कहते हैं। मेरूदण्ड की शक्ति ही पर्वतराज की पुत्री या पार्वती है। इसकी स्वाभाविक गति शिवत्व की ओर है। पार्वती की शक्ति काय - योग रूप तप से ही जाग्रत होती है, भोग से नहीं। ऋषभदेव ने 'काय - योग' धारण कर पार्वतीय (मेरूदण्ड) की शक्ति जाग्रत कर मन की विभाव - कर्म - शक्ति का संहार किया था। शिव पार्वती संबंध एवं शिव की संहारक शक्ति इसी सन्दर्भ में देखी जा सकती है। जब विभाव शक्तियों का नाश हो जाता है तब आत्म - पटल पर केवलसूर्य का उदय होता है, जो शिव - सुख स्वरूप है। इस कारण जैन दर्शन में मोक्ष - मार्ग को शिव - मार्ग, मोक्ष - गति को शिव - गति और मोक्ष को शिवपुर कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माघ कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि को ऋषभदेव कैलाश पर्वत से शिवपुर गये थे। उस रात्रि सर्व साधु संघ ने कैलाश पर्वत पर उपवास एवं जागरण कर ऋषभदेव की आराधना की थी। इस कारण यह महाशिवरात्रि और कैलाश पर्वत दोनों पूज्य हुए। इन दोनों का संबंध शिव से भी जुड़ा हुआ है। शिव को महाशिवरात्रि में शिवत्व की प्राप्ति हुई थी। उत्तर भारत में शिवरात्रि का पर्व फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी माना है, जबकि दक्षिण भारत में माघ कृष्णा चतुर्दशी को शिवरात्रि मनाई जाती है। उत्तर - दक्षिणी पंचांगों में मौलिक भेद के कारण यह अन्तर है। उत्तर भारत वाले मास का प्रारम्भ कृष्ण पक्ष से मानते हैं जबकि दक्षिण वाले शुक्लपक्ष से। ईशान संहिता[19] में भी माघ कृष्णा चतुर्दशी को महाशिवरात्रि मानी है।

शिव शब्द से जुड़ा 'लिंग' शब्द का स्पष्टीकरण भी अपेक्षित है। पहले 'क्षेत्र' को लिंग शब्द से सम्बोधित किया जाता था जैसे कलिंग, दार्जिलिंग आदि। तिब्बतीय भाषा में 'लिंग' शब्द का उपयोग 'क्षेत्र' के लिये किया जाता है। इसी दृष्टि से शिव के साथ शिव - लिंग पूजा की परम्परा का संबंध कैलाश - क्षेत्र की पूजा से जुड़ा है जो कालान्तर में शिव - लिंग की पूजा में बदल गया है। वस्तुतः सिद्धक्षेत्र कैलाश की पूजा ही लिंग - पूजा है।

उक्त तथ्यों पर विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि आदिब्रह्मा और भगवान विष्णु के अवतार भगवान ऋषभदेव स्वयं ही शिव हैं। वे परमब्रह्म परमात्मा के साथ ही वस्तु के सत् स्वरूप की तीन अवस्थाओं के प्रतीकात्मक प्रतिनिधि भी हैं। उन्हें अच्छी तरह पहिचान एवं समझकर ही हम अपने अज्ञान - मोह रूप अंधकार को दूर कर आत्म - जागरण कर सुखी हो सकते हैं और शुभ - अशुभ भावों की कर्म - संतति का नाश कर शिवत्व प्राप्त कर सकते हैं। यही शिव एवं आत्म - स्वभाव रूप शिवत्व की आराधना है। समग्र रूप से ऋषभदेव वैदिक एवं श्रमण संस्कृति के सर्वमान्य एवं पूज्य आद्य महापुरुष हैं। साम्प्रदायिक भेद के ऊपर उठकर यदि हम उनका मूल्यांकन करें तो राष्ट्रीय एकात्मता एवं स्वसंचालित विश्व व्यवस्था के सूत्र हमें उनकी शिक्षाओं में सहज ही प्राप्त हो जायेंगे।

सन्दर्भ –

1. महाशिवपुराण 7 – 2 – 9, पद 4/47.
2. प्रभाष पुराण।
3. आदि पुराण।
4. धवला, पृ. 46, भक्तामर स्तोत्र, श्लोक 25
5. पउम चरिउ।
6. महापुराण, पर्व 12, 95.
7. ऋग्वेद, 10, सूत्र 121, 1.
8. महाभारत शान्ति पर्व, अ. 349.
9. ऋग्वेद 4/58/3.
10. अथर्ववेद, 10/7/17
11. अथर्ववेद, 15/42/4.
12. वाराह पुराण, अध्याय 74, पृ. 49.
13. लिंग पुराण, अध्याय 47, श्लोक 19 – 24.
14. स्कन्ध पुराण, अध्याय 37, श्लोक 57.
15. वायु पुराण, अध्याय 33, पद्य 50 – 52.
16. ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय 14, पद्य 61.
17. कूर्मपुराण, अध्याय 41, श्लोक 37 – 38.
18. अग्नि पुराण, 10/10 – 11.
19. *ईशान संहिता*

प्राप्त - 30.1.2000

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 39 - 44

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती और द्रव्यसंग्रहकार मुनि नेमिचन्द्र की भिन्नता

■ डॉ. जयकुमार जैन*

जैन साहित्य के विशाल भण्डार के अनुशीलन से पता चलता है कि भारतवर्ष में जैन धर्म और वाङ्मय के सेवक नेमिचन्द्र नामधारी अनेक विद्वान् हुए हैं -

1. ईसवी सन् की छठी शताब्दी में एक नेमिचन्द्र नामक विद्वान् हुए। इनका सम्बन्ध नन्दिसंघीय बलात्करगण से था। इनके गुरु का नाम प्रभाचन्द्र था तथा भानुचन्द्र इनके शिष्य थे। इनका समय शक सम्वत् 478 से 487 तदनुसार ईस्वी सन् 556 से 565 माना गया है।

2. ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में एक अन्य नेमिचन्द्र नामक विद्वान् हुए। इनका सम्बन्ध नन्दिसंघ के देशीय गण से था तथा सिद्धान्तचक्रवर्ती इनकी उपाधि थी। ये अभयनन्दि के दीक्षा शिष्य तथा वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि के गुरु भाई माने गये हैं। विविध प्रमाणों के आधार पर इनका समय ईसवी सन् 981 माना गया है। गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार इनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं।

3. ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए एक अन्य नेमिचन्द्र नामक विद्वान् का सम्बन्ध भी नन्दिसंघ के देशीय गण से था तथा सिद्धान्तिदेव या सैद्धान्तिकदेव इनकी उपाधि थी। श्रावकाचार के रचयिता वसुनन्दि इनके शिष्य थे। इन्हें धारा नरेश भोज के समकालीन माना गया है। राजा भोज का समय इतिहासज्ञों की दृष्टि में वि.सं. 1075 - 1125, तदनुसार ईसवी सन् 1018 - 1068 है। द्रव्यसंग्रह और वृहद्द्रव्यसंग्रह इनकी विख्यात रचनायें हैं।

4. ईसवी सन् की तेरहवीं शताब्दी में एक अन्य नेमिचन्द्र नामक विद्वान् हुए। इनके समय के संस्कृत एवं कन्नड़ के कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। 'अर्धनेमिपुराण' इनकी प्रसिद्ध रचना है। यह संस्कृत मिश्रित कन्नड भाषा में लिखी गई है तथा चम्पक शार्दूल वृत्त में है। अनुप्रास छटा के सन्दर्भ में कन्नड का कोई भी कवि इनकी समानता नहीं कर सकता है।

5. ईसवी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी में एक अन्य नेमिचन्द्र नामक विद्वान् हुए। इन्होंने रविव्रत कथा एवं अनन्तव्रत कथा आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया। अपभ्रंश के कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

6. ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक अन्य नेमिचन्द्र नामक विद्वान् हुए हैं। इनका सम्बन्ध नन्दिसंघ के बलात्कार गण के सरस्वती गच्छ से रहा है। भट्टारक ज्ञानभूषण इनके गुरु थे, जिनका समय वि.सं. 1555 (1498 ई.) मान्य है। इन्होंने केशव वर्णी कृत कन्नड टीका के आधार पर गोम्मटसार की जीवप्रबोधिनी नाम संस्कृत टीका लिखी है।

उपर्युक्त छह विद्वानों में प्रथम नेमिचन्द्र का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अतः वे हमारे लिये प्रकृत में विचारणीय नहीं हैं। द्वितीय नेमिचन्द्र का जैन सिद्धान्त के विकास

* रीडर एवं अध्यक्ष - संस्कृत विभाग, सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं प्रचार-प्रसार में महनीय योगदान है। जैन श्रमणों एवं विद्वानों में धवला और जयधवला को विद्वत्ता का निकष स्वीकार कर लिया गया था। किन्तु पठन-पाठन में इनकी दुष्करता आड़े आ रही थी। तब इनके सार भाग को एकत्र कर कुछ अन्य ग्रन्थों के प्रणयन की अपेक्षा थी। इस कार्य को नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने गोम्मटसार आदि ग्रन्थों की रचना के द्वारा पूरा किया। सिद्धान्तचक्रवर्ती इनकी उपाधि है। गोम्मटसार कर्मकाण्ड में उन्होंने लिखा है -

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं॥[1]

अर्थात् जिस प्रकार चक्रवर्ती अपने चक्ररत्न से छह खण्डों को निर्विघ्न अपने अधीन कर लेता है, उसी प्रकार मैंने बुद्धि रूपी चक्र से षट्खण्डागम को अच्छी तरह से अपने अधीन कर लिया है।

सिद्धान्त ग्रन्थों के अधीती श्रमणों को सिद्धान्तचक्रवर्ती की उपाधि प्राचीन काल से ही दी जाती रही है। श्री वीरसेन स्वामी ने जयधवला की प्रशस्ति में स्पष्टतया उल्लेख किया है कि भरत चक्रवर्ती की आज्ञा के समान जिनकी वाणी षट्खण्डागम में अस्खलित रहती है।[2] कदाचित् उनके समय से ही सिद्धान्तज्ञ को सिद्धान्तचक्रवर्ती कहा जाने लगा हो। अतः प्रकृत नेमिचन्द्र ने धवला-जयधवला का मंथन कर क्रमशः गोम्मटसार और लब्धिसार ग्रन्थों की रचना की तथा सिद्धान्त ग्रन्थों के अगाध पाण्डित्य को प्रकट किया। अतः उनका सिद्धान्तचक्रवर्ती पद सर्वथा समीचीन तथा सार्थक ही है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने अपने ग्रन्थों में अपनी गुरु परम्परा का स्वयं उल्लेख किया है, अतः वह प्रायः निर्विवाद है। गोम्मटसार कर्मकाण्ड में उन्होंने लिखा है -

जस्स य पायपसायेण - णंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं॥[3]

अर्थात् जिनके चरण प्रसाद से वीरेन्द्रनन्दि (वीरनन्दि) और इन्द्रनन्दि का वत्स अनन्त संसार रूपी समुद्र से पार हो गया, उन अभयनन्दि गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

एक अन्य स्थल पर प्रत्यय प्रकरण के प्रारम्भ में उन्होंने लिखा है -

णमिऊण अभयणंदिं सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं॥[4]

अर्थात् मैं अभयनन्दि को श्रुत समुद्र के पारगामी इन्द्रनन्दि गुरु को और वीरनन्दि को नमस्कार करके प्रकृतियों के प्रत्यय कारण को कहूँगा।

त्रिलोकसार ग्रन्थ में अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए नेमिचन्द्र मुनि ने लिखा है -

इदि णेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण।
रइयो तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया॥[5]

अर्थात् अभयनन्दि के वत्स अल्पश्रुत नेमिचन्द्र मुनि ने इस प्रकार त्रिलोकसार नामक ग्रन्थ की रचना की। बहुश्रुत आचार्य उसे क्षमा करें।

इसी प्रकार लब्धिसार ग्रन्थ में भी दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि के कथन पूरा होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रसंग में उन्होंने लिखा है कि वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि के वत्स एवं अभयनन्दि के शिष्य अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र ने दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि का कथन किया।[6]

इन प्रशस्तियों से सुस्पष्ट है कि नेमिचन्द्र के गुरु अभयनन्दि, वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि थे। अभयनन्दि तो उनके दीक्षा गुरु थे तथा वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि विद्यागुरु थे अथवा ज्येष्ठ गुरुभाई थे। क्योंकि वीरनन्दि ने चन्द्रप्रभचरित में अपने को अभयनन्दि का शिष्य बताया है और नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती भी अभयनन्दि के शिष्य हैं। उम्र एवं ज्ञान में लघुता के कारण नेमिचन्द्र ने अपने गुरुभाइयों से विद्याध्यन किया हो, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतः उन्हें गुरुभाई के साथ-साथ गुरु भी माना जा सकता है। इन्द्रनन्दि को नेमिचन्द्र ने श्रुतसागर का पारगामी लिखा है तथा उन्होंने लिखा है कि उन्हीं के समीप सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन करके कनकनन्दि आचार्य ने सत्त्व-स्थान का कथन किया है। उसी सत्त्वस्थान का संग्रह नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड में किया है -

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकिणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥[8]

ये इन्द्रनन्दि कौन है? इस विषय में निश्चित कुछ भी कहना बड़ा कठिन है। श्री जुगलकिशोर मुख्तार ज्वालामालिनी कल्प के रचयिता इन्द्रनन्दि से इन्हें अभिन्न मानते हैं। क्योंकि ज्वालामालिनीकल्प का रचनाकाल शक सं. 861 (939 ई.) है। ज्वालामालिनीकल्पकार इन्द्रनन्दि ने अपने गुरु का नाम वप्पमंदि कहा है, जबकि प्रकृत इन्द्रनन्दि अभयनन्दि के शिष्य हैं। मुख्तार साहब की संभावना है कि इन्द्रनन्दि ने वप्पनन्दि से दीक्षा ली हो और अभयनन्दि से सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया हो।[9]

गंगवंशी राजा राचमल्ल के प्रधानमंत्री और सेनापति चामुण्डराय नेमिचन्द्र के शिष्य थे। इन चामुण्डराय ने श्रवणबेलगोला (मैसूर) में विंध्यगिरि पर बाहुबली की 57 फीट उन्नत प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी। चामुण्डराय का घर का नाम गोम्मट था। इसी कारण बाहुबलि की उक्त मूर्ति गोम्मटेश या गोम्मटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुई। गोम्मट (चामुण्डराय) के लिये नेमिचन्द्र ने गोम्मटसार ग्रंथ की रचना की थी।[11] चामुण्डराय ने चामुण्ड पुराण की रचना शक सं. 900 (978 ई.) में पूर्ण की थी। अजितनाथ पुराण की रचना शक सं. 915 (993 ई.) में पूर्ण की थी।

बाहुबलि चरित्र में गोम्मटेश्वर की प्रतिष्ठा का समय इस प्रकार कहा गया है -

कल्यब्दे षट्शताख्ये विनुतविभवसंवत्सरे मासि चैत्रे
पञ्चम्यां शुक्लपक्षे दिनमणिदिवसे कुम्भलग्ने सुयोगे।
सौभाग्ये मस्तनाम्नि प्रकटितभगणे सुप्रशस्तां चकार
श्रीमच्चामुण्डराजो वेल्गुलनगरे गोम्मटेशप्रतिष्ठाम्॥

अर्थात् कल्कि सं. 600 में विभव संवत्सर में चैत्र शुक्ला पंचमी, रविवार को कुंभ लग्न, सौभाग्य योग, मृगशिरा नक्षत्र में चामुण्डराय ने वेल्गुल नगर में गोम्मटेश की प्रतिष्ठा करायी।

इस निर्दिष्ट तिथि के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं, परन्तु डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने भारतीय ज्योतिष की गणना के आधार पर विभव संवत्सर चैत्र शुक्ला पंचमी, रविवार को मृगशिर नक्षत्र का योग 13 मार्च सन् 981 में घटित माना है।[12] यही नेमिचन्द्र का काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इस आधार पर नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का समय ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध मानना समीचीन प्रतीत होता है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की निम्नलिखित रचनायें हैं -

1. गोम्मटसार : जीवकाण्ड 734 गाथात्मक + कर्मकाण्ड 962 गाथात्मक
2. त्रिलोकसार : 1018 गाथात्मक
3. लब्धिसार : 649 गाथात्मक
4. क्षपणासार : 653 गाथात्मक

तृतीय नेमिचन्द्र द्रव्यसंग्रह और वृहद् द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र मुनि हैं, सिद्धान्तिदेव जिनकी उपाधि है। पहले भ्रांतिवश गोम्मटसारादि के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती को ही द्रव्यसंग्रह और वृहद्द्रव्यसंग्रह का रचयिता मान लिया गया था। डॉ. मोहनलाल मेहता एवं प्रो. हीरालाल कापड़िया ने गोम्मटसारादि के कर्ता को ही द्रव्यसंग्रह का कर्ता उल्लेखित किया है।[13] परन्तु वास्तव में द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र गोम्मटसारादि के रचयिता नेमिचन्द्र से भिन्न हैं। वृहद्द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव ने ग्रन्थ के प्रारम्भिक परिचय में लिखा है -

'अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपति राजभोजदेवाभिधानकलिकालचक्रवर्तीसम्बन्धिन: श्रीपाल मण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याश्रमनामनगरे श्री मुनिसुव्रततीर्थंकर चैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंदित्ति समुत्पन्नसुखामृतरसास्वादविपरीतनारकादिदु:खभयभीतस्य परमात्मभावनोत्पन्न सुखसुधारसपिपासितस्य भेदाभेदरत्नत्रयभावनाप्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेकनियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्तं श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवै: पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद्विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य वृहद्द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन वृत्ति: प्रारम्यते।'[14]

मालवदेश में धारा नगरी का स्वामी कलिकालचक्रवर्ती राजा भोजदेव था। उससे सम्बद्ध मण्डलेश्वर श्रीपाल के आश्रम नामक नगर में श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के चैत्यालय में भाण्डागार आदि अनेक नियोगों के अधिकारी सोम नामक राजश्रेष्ठि के लिये श्री नेमचिन्द्र सिद्धान्तिदेव ने पहले 26 गाथाओं के द्वारा लघु द्रव्यसंग्रह नाम ग्रंथ रचा। पश्चात् विशेष तत्वों के ज्ञान के लिये वृहद्द्रव्यसंग्रह नाम ग्रंथ की रचना की। उनकी वृत्ति को मैं प्रारम्भ करता हूँ।

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि लघुद्रव्यसंग्रह और वृहद्द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र की उपाधि सिद्धान्तिदेव थी न कि सिद्धान्तचक्रवर्ती। यद्यपि इनका सम्बन्ध नन्दि संघ के देशीय गण से है, तथापि दोनों अभिन्न नहीं हैं। ये तो वे नेमिचन्द्र हैं जिनका उल्लेख वसुनन्दि ने अपने श्रावकाचार में अपने गुरु के रूप में किया है तथा उन्हें जिनागम रूप समुद्र की बेलातरंगों से धुले हृदय वाला एवं जगद्विख्यात कहा है -

सिस्सो तस्स जिणागम - जलणिहि - वेलातरंग - धोयमणो।
संजाओ सयल - जए विक्खाओ नेमिचन्दु त्ति॥
तस्स पसाएण मए आयरियपंपरागयं सत्थं।
वच्छल्लयाए रइयं भदियाणमुवासयज्झयणं॥[15]

वसुनन्दि का समय वि.सं. 1150 (1093 ई.) के लगभग है। यह समय नेमिचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्तचक्रवर्ती के समय से एक शताब्दी से भी बाद का है। अत: वसुनन्दि के गुरु नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव और गोम्मटसारादि के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की अभिन्नता कथमपि संभव प्रतीत नहीं होती है। वसुनन्दि की भी सिद्धान्तिदेव उपाधि है। अत: उनके गुरु की भी यह उपाधि रही है, यह सर्वथा ठीक ही लगता है। नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव नयनन्दि के शिष्य हैं और वसुनन्दि के गुरु, जबकि नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती अभयनन्दि के शिष्य हैं और चामुण्डराय के गुरु। अत: दोनों की भिन्नता सुस्पष्ट है।

द्रव्यसंग्रह की रचना आश्रमनगर में उल्लिखित है। इतिहासज्ञ विद्वान् राजस्थान के केशोरायपाटन को ही आश्रमनगर मानते हैं।[16] आश्रमपत्तन - आशारम्भपट्टण - केशोरम्यपट्टन - केशोरायपाटन। यह भाषा वैज्ञानिक विकासक्रम इस तथ्य का समर्थन करता प्रतीत होता है। केवलपट्टन या पुटभेदन नाम से भी इस नगर के प्राचीन उल्लेख मिलते हैं। प्राचीन काल में यह नगर राजा भोजदेव के परमार साम्राज्य के अन्तर्गत मालवा में रहा है। इतिहास इस सत्य का साक्षी है। इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव धारानरेश भोजदेव से सम्बद्ध रहे हैं, जबकि नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती तो राजा भोज से लगभग एक शतक पूर्ववर्ती हैं। नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव की दो ही रचनायें उपलब्ध हैं - लघुद्रव्यसंग्रह और वृहद्द्रव्यसंग्रह। भाषा की दृष्टि से भी सिद्धान्तचक्रवर्ती और सिद्धान्तिदेव की भिन्नता देखी जा सकती है।

चतुर्थ नेमिचन्द्र कन्नड के कवि हैं तथा इनका समय ईसवी सन् की तेरहवीं शताब्दी है। पञ्चम नेमिचन्द्र अपभ्रंश के कवि हैं तथा इनका समय ईसवी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी है। छठे नेमिचन्द्र तो गोम्मटसार के टीकाकार है। अत: इन तीनों का तो स्पष्टतया नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती से कोई सम्बन्ध है ही।

गोम्मटसार प्रणेता नेमिचन्द्र एवं द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र की भिन्नता निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर आंकी जा सकती है -

	नेमिचन्द्र (गोम्मटसारादि के रचयिता)	**नेमिचन्द्र (द्रव्यसंग्रह के रचयिता)**
1.	उपाधि सिद्धान्तचक्रवर्ती	उपाधि सिद्धान्तिदेव
2.	गुरु अभयनन्दि, वीरनन्दि एवं इन्द्रनन्दि	गुरु नयनन्दि
3.	शिष्य चामुण्डराय	शिष्य वसुनन्दि सिद्धान्तिदेव
4.	ग्रन्थों का रचना स्थान उल्लिखित नहीं	आश्रम नगर (केशोरायपाटन) में द्रव्यसंग्रह की रचना
5.	समय - दसवीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध एवं ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध	समय - ग्यारहवीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध
6.	राज्यकाल - गंगवंशी राजा राचमल्ल	राज्यकाल - धारानरेश राजा भोजदेव
7.	कतिपय भाषिक प्रयोग द्रव्यसंग्रह एवं वृहद्द्रव्यसंग्रह से भिन्न	कतिपय भाषिक प्रयोग गोम्मटसारादि से भिन्न

उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि आलेख के प्रारम्भ में उल्लिखित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छहों नेमिचन्द्र नामक विद्वान् भिन्न-भिन्न हैं। गोम्मटसारादि के रचयिता तथा द्रव्यसंग्रह के रचयिता को एक मानना प्रमाणविरूद्ध एवं असमीचीन है।

सन्दर्भ -

1. गोम्मटसार कर्मकाण्ड, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1973, गाथा 397.
2. द्रष्टव्य - जयधवला, अन्त्यप्रशस्ति, जैन संस्कृति सरंक्षक संघ, शोलापुर, 1987.
3. गोम्मटसार कर्मकाण्ड, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1973, गाथा 436
4. वही, गाथा 785.
5. त्रिलोकसार, ब्र. लाडमल जैन, श्रीमहावीरजी, 1975, गाथा 1018.
6. लब्धिसार, हीरालाल पाटनी, निवाई, 1978, गाथा 648.
7. चन्द्रप्रभचरित, लालचन्द हीराचन्द्र दोशी, शोलापुर, अन्त्य प्रशस्ति.
8. गोम्मटसार कर्मकाण्ड, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1973, गाथा 396.
9. द्रष्टव्य - जैन साहित्य के इतिहास पर विशद प्रकाश, वीर शासन संघ, कलकत्ता, 1956.
10. द्रष्टव्य - तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-2, अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, सागर, 1974, पृ. 420-421.
11. बाहुबलिचरित्र, अन्त्य प्रशस्ति
12. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-2, अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, सागर, 1974, पृ. 422.
13. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-4, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, 1969, पृ. 134.
14. वृहद्द्रव्यसंग्रह, सन्मति दि. जैन महिला विद्यालय, सीकर, 1987, पृ. 1-2.
15. वसुनन्दिश्रावकाचार (उपासकाध्ययन), जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, गाथा 543-544.
16. द्रष्टव्य - तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-2, अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, सागर, 1974, पृ. 441.

प्राप्त - 21.9.2000

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

JINAMANJARI

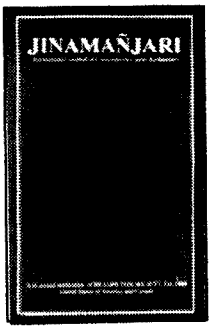

Editor - S.A. Bhuvanendra Kumar
Periodicity - Bi-annual (April & October)
Publisher - **Brahmi Society, Canada-U.S.A.**
Contact - Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar
4665, Moccasin Trail,
MISSISSAUGA, INTARIO,
Canada 14z2w5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 45 - 49

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

क्या औरंगजेब की नीतियाँ हिन्दू विरोधी थीं?

■ डॉ. अनिल कुमार जैन*

औरंगजेब ने लगभग पचास वर्ष तक राज्य किया। उसके शासनकाल में मुगल साम्राज्य के विस्तार का चर्मोत्कर्ष हुआ। जब यह साम्राज्य अपने शिखर पर था, इसका विस्तार उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में जिंजी तथा पश्चिम में हिन्दुकुश से लेकर पूर्व में चटगांव तक था। औरंगजेब बड़ा परिश्रमी शासक था और प्रशासन के कार्य में वह न स्वयं को और न ही अपने अधीनस्थ अधिकारियों को बख्शता था। अपने पूर्वजों की तरह औरंगजेब को दिखाने का कोई शौक नहीं था। अपने व्यक्तिगत जीवन में भी वह अत्यन्त साधारण था। वह अपनी कट्टरता तथा ईश्वर से डरने वाले सच्चे मुसलमान के रूप में प्रसिद्ध था।

शासक के रूप में औरंगजेब की उपलब्धियों के बारे में इतिहासकारों के बीच बड़ा मतभेद है। कुछ के अनुसार औरंगजेब ने अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति को बिल्कुल परिवर्तित कर दिया था जिससे साम्राज्य के प्रति हिन्दुओं की निष्ठा कम हो गई थी। मंदिरों के प्रति उसका दृष्टिकोण तथा जजिया लागू करना दूसरे धर्मों के प्रति उसकी असहिष्णुता के प्रबल प्रमाण हैं।

औरंगजेब ने सन् 1665 में सोमनाथ के प्रसिद्ध मंदिर सहित गुजरात के बहुत से अन्य मंदिरों को तोड़ने के आदेश दिये। सन् 1669 में बनारस के विश्वनाथ मंदिर तथा वीसलदेव द्वारा जहांगीर के काल में मथुरा में निर्मित केशवराय जैसे प्रमुख मंदिरों को विध्वंस कर दिया गया और इनकी जगह मस्जिदों का निर्माण किया गया। उड़ीसा के भी बहुत से नव - निर्मित मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया। सन् 1669 - 80 में जब औरंगजेब मारबाड़ के राठौड़ों और उदयपुर के राजा के साथ संघर्षरत था, उदयपुर तथा जोधपुर और उसके परगनों के अनेक मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया। अकबर ने गैर - मुलसमानों पर लगाये जाने वाले जजिया कर को समाप्त कर दिया था, लेकिन औरंगजेब ने सन् 1679 में इसे पुनः लागू कर दिया।

सन् 1675 में सिक्खों के गुरु तेगबहादुर को उनके पांच अनुयायियों के साथ मार डाला गया। इसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्रों को गिरफ्तार कर लिया तथा बाद में उनका कत्ल कर दिया गया।

औरंगजेब के उक्त कार्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि उसकी धार्मिक नीतियाँ गैर - मुस्लिम विरोधी, विशेषकर हिन्दू विरोधी थीं। कुछ इतिहासकारों का मत है कि इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप उसे मराठों, सिक्खों तथा जाटों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा। लेकिन यह निष्कर्ष निकालने से पहले कुछ मुद्दों पर विचार करना अत्यावश्यक है।

धर्म निरपेक्ष राज्य –

औरंगजेब के साम्राज्य में अधिकांश आबादी हिन्दुओं की थी। उसके सरदारों में भी हिन्दू सरदारों की संख्या एक चौथाई थी। पिछले मुगल काल में हिन्दू सरदारों की संख्या से यह संख्या अधिक थी। अतः हिन्दुओं का समर्थन पाये बगैर वह इतने लम्बे समय तक शासन नहीं कर सकता था। औरंगजेब कट्टर मुसलमान अवश्य था, लेकिन

* प्रबन्धक – तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम, बी – 26, सूर्यनारायण सोसायटी, विसत पेट्रोल पम्प के सामने, साबरमती, अहमदाबाद – 5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह ऐसी कोई भी नीति निर्धारित नहीं कर सकता था जिसके फलस्वरूप हिन्दू, शक्तिशाली हिन्दू राजा और जमींदार उसके विरोध में आ जायें तथा उसके हिन्दू सरदार बगावत कर दें अन्यथा उसका असफल होना निश्चित था।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही उसने अपने राज्य में धर्म-निरपेक्ष कानूनों, जवाबित को जारी किया। उसके इन आदेशों को जवाबित-ए-आलमगीरी में संग्रहीत किया गया है। उसके राज्य में यद्यपि नए हिन्दू मंदिरों, यहूदियों के मंदिरों तथा गिरजाघरों के बनाने की मनाही थी तदापि पुराने धर्मायतनों के मरम्मत की पूरी छूट थी।

आम जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए उसने सार्वजनिक स्थानों पर शराब तथा भांग जैसे नशीले पदार्थों के सेवन पर पाबंदी लगा दी थी। वेश्यालयों तथा जुओं के अड्डों पर भी पूर्ण नियन्त्रण था। कुछ विद्वानों का मत है कि वह कट्टर मुसलमान था, अत: जो कार्य इस्लाम धर्म सम्मत नहीं थे उन पर उसने पाबंदी लगा दी। लेकिन वास्तव में उसका उद्देश्य अंध विश्वास को समाप्त करना तथा प्रजा का नैतिक उत्थान करना था। वैश्यावृत्ति पर नियन्त्रण तथा नशाबंदी के कारण ही देश में चारों और शान्ति थी। कहीं भी किसी प्रकार का भय नहीं था।

वस्तुत: औरंगजेब धर्म को राजनीति से जोड़ने के पक्ष में कभी नहीं रहा। एक अवसर पर एक ऐसे प्रार्थना पत्र पर जिसमें किसी पद पर धार्मिक आधार पर नियुक्ति की मांग की थी, औरंगजेब ने लिखा 'सांसारिक मामलों में धर्म का क्या स्थान? और धर्म के मामलों में धर्मांधता का क्या स्थान? तुम्हारा धर्म तुम्हारे लिए है और मेरा धर्म मेरे लिए। जैसा कि सुझाया गया है, अगर मैं भी इस नियम को मान लूं तो सभी (हिन्दू) राजाओं और उनके अनुयाइयों को खत्म कर देना मेरा कर्त्तव्य हो जायेगा।'[1]

जैन कवियों द्वारा प्रशंसा -

औरंगजेब के शासनकाल में कई जैन कवि हुये हैं। इनमें से रामचन्द्र, जगतराम, भैया भगवतीदास, बुलाकीदास, तथा विनोदीलाल के नाम उल्लेखनीय हैं।[2] इन सभी कवियों ने औरंगजेब की बहुत प्रशंसा की है। इनके अनुसार औरंगजेब अनुशासन प्रिय तथा जनता के हितों की रक्षा करने वाला था। उसके राज्य में किसी प्रकार का डर नहीं था, तथा सभी लोग सुख से रहते थे। उसकी आज्ञा को सभी लोग मानते थे।

कवि रामचन्द्र का रचनाकाल सन् 1663 से 1693 तक रहा है। उन्होंने अपनी रचना 'रामविनोद' में लिखा है -

'मरदानौ अरू महाबली, अवरंग साहि नरंद।
तास राज मैं हर्ष सुं, रच्यो शास्त्र आनन्द॥'[3]

कवि जगतराम के पितामह शहर गुहाना के रहने वाले थे किन्तु उनके पिता अपने भाई के साथ पानीपत आकर रहने लगे थे। जगतराम अपने परिवार सहित आगरा आ गये। वहीं पर उन्होंने साहित्य सृजन किया। इनका रचनाकाल सन् 1665-1773 रहा है। कहते हैं कि ये औरंगजेब के राज्य में किसी उच्च पद पर आसीन थे तथा इन्हें राजा की पदवी मिली थी। औरंगजेब के राज्य में आगरा की स्थिति का वर्णन करते हुए अपनी रचना 'पद्मनन्दिय पंच विशंतिका' की प्रशस्ति में कवि जगत राम लिखते हैं -

'सहर आगरौ है सुख थान, परतषि दीसै स्वर्ग विमान।
चारों वरन रहें सुख पाई, तहां बहु शास्त्र रच्यो सुखदाई॥'[4]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भैया भगवतीदास भी औरंगजेब के शासन काल में ही हुये थे। इनकी जाति अग्रवाल तथा गौत्र बंसल था। इनका रचना काल सन् 1674 - 1698 है। 'ब्रह्म विलास' की प्रशस्ति में ये लिखते हैं कि उस समय औरंगजेब का राज्य था, जिसकी आज्ञा अभंग रूप से बहती थी। नृपति की उपकार दृष्टि के कारण ईति - भीति कहीं पर व्याप्त नहीं थी -

'जम्बू द्वीप सु भारत वर्ष, तामें आर्य क्षेत्र उत्कर्ष।
तहां उग्रसेन पुर थान, नगर आगरा नाम प्रधान॥
नृपति तहां राजै औरंग, जाकी आज्ञा वहै अभंग।
ईति - भीति व्यापै नहिं कोय, यह उपकार नृपति को होय॥'[5]

बुलाकी दास मूलत: बयाना के रहने वाले थे। तदुपरान्त वे जहानाबाद आकर रहने लगे। ये अग्रवाल जाति के थे इनका गौत्र गोयल था। इनका रचनाकाल सन् 1680 - 1697 रहा है। ये औरंगजेब के शासन के बारे में लिखते हैं -

'नगर जहानाबाद में, साहिब औरंग साहि।
विधिना तिस छत्तर दियो, रहे प्रजा सुख माहिं॥'[6]

कवि विनोदीलाल भी अग्रवाल जाति के थे इनका गोत्र गर्ग था। ये साहिजादपुर (शाहजहांपुर) के रहने वाले थे। इनका रचना समय सन् 1693 का है। इन्होंने तो औरंगजेब की अत्यधिक प्रशंसा की है। ये लिखते हैं -

'औरंग साहिबली को राज। पातसाह हित सिरताज।
सुख विधान सक बंध नरेस। दिल्ली पति तप तेज दिनेस॥
अपने मत में सम्यक् बंत। शील शिरोमणि निज तियकंत॥
दीप दीप है जाकी आन। रहै साह अरू संका मान॥
साहिजहां के वर फरिजंद। दिन - दिन तेज बढ़ै ज्यों वन्द।
भयो चकत्ता उनस उदीस। सिंह बली बन जैसे होत॥'[7]

यहाँ पर विचारणीय यह है कि यदि औरंगजेब की नीतियाँ इस्लामेतर विरोधी होती तो ये कवि उसकी आलोचना करते, प्रशंसा क्यों करते? एक ओर औरंगजेब हिन्दू मंदिरों को नष्ट करवा रहा था, दूसरों ओर वह इन कवियों का प्रशंसा पात्र भी बना रहा। अत: औरंगजेब की धार्मिक नीति हिन्दू विरोधी रही हो ऐसा मानना गलत ही होगा।

यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि औरंगजेब जैनों के प्रति अधिक उदार रहा होगा। लेकिन ऐसा मानना भ्रम है। गैर - मुलसमानों के प्रति उसकी नीति एक सी ही थी। वैसे भी जैनों के आचार - विचार, रहन - सहन तथा यहां तक कि पूजा - पाठ आदि हिन्दुओं से पूर्णत: मेल खाते हैं। जैनों तथा हिन्दुओं के मंदिर भी बाहर से एक से ही होते हैं। एक बात यह और कि उपरोक्त कवियों में तीन कवि अग्रवाल जाति के थे। अग्रवाल जैनों तथा अग्रवाल हिन्दुओं में बहुत पहले से ही शादी - विवाह होते रहे हैं। इन कवियों का सम्बन्ध अग्रवाल हिन्दुओं से भी होना अवश्यम्भावी है। एक ओर इन कवियों के (हिन्दू) सम्बन्धियों के साथ अन्याय / अत्याचार हो रहा हो दूसरी ओर ये अन्याय करने वाले की प्रशंसा करें, ऐसा होना असंभव ही है।

मंदिर तुड़वाने के कारण -

अब प्रश्न यह है कि यदि वह हिन्दू धर्म विरोधी नहीं था तो उसने हिन्दू मंदिरों को तुड़वाने के आदेश क्यों दिये? यहां एक बात यह ध्यान रखनी है कि उसने हिन्दू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंदिरों को तुड़वाने के आम आदेश कभी नहीं दिये बल्कि कट्टर मुसलमान होने के बावजूद भी उसने हिन्दू मंदिरों तथा मठों को अनुदान दिया। वह जिन मंदिरों को विरोधी प्रचार का केन्द्र समझता था, उनको ही तुड़वाने का आदेश देता था। उसे जरा भी शक हो जाये कि अमुक मंदिर में उसके विरूद्ध षडयंत्र रचा जा रहा है या ये मंदिर राजनैतिक गतिविधियों के केन्द्र बन गये हैं तभी वह उन मंदिरों में हस्तक्षेप के आदेश देता था। बनारस तथा मथुरा के मंदिर तुड़वाने के भी यही कारण थे। उसका विश्वास था कि इतने बड़े राज्य को षडयंत्रकारियों से मुक्त रखे बिना वह निर्विघ्न शासन नहीं कर सकता है। अत: हिन्दू मंदिरों के प्रति उसकी नीति का आधार धार्मिक नहीं बल्कि राजनैतिक था।

औरंगजेब जजिया कर लगाने का भी इच्छुक नहीं था। इसी कारण अपने शासन के 22 वर्षों तक उसने जजिया कर नहीं लगाया। लेकिन उसके धर्म गुरु इसे लगाने पर बहुत जोर दे रहे थे। औरंगजेब इन धर्म गुरुओं का विश्वास किसी भी कीमत पर बनाये रखना चाहता था। इसीलिए उसने इनके दबाव में आकर इस कर को लागू तो कर दिया लेकिन स्त्रियों, बच्चों, अपंगों, निम्न आय के व्यक्तियों तथा सरकारी कर्मचारियों को इस कर से मुक्त रखा। प्राकृतिक दुर्योगों की स्थिति में इस कर की वसूली में नरमी बरती जाती थी। इस कर से जो भी आमदनी होती थी उसे मुसलमान धर्म के नेताओं जिनमें अधिकतर बेरोजगार थे, के लिए खर्च किया जाता था।

मराठों, जाटों तथा सिक्खों के विद्रोह -

अपने शासनकाल में औरंगजेब को कई कठिन राजनैतिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इनमें से दक्षिण में मराठों, उत्तर में जाट तथा राजपूतों तथा उत्तर पश्चिम में अफगान और सिक्खों के विद्रोह प्रमुख थे। कहा जाता है कि अफगानों के विद्रोह को छोड़कर ये सभी विद्रोह औरंगजेब की संकीर्ण धार्मिक नीतियों के विरूद्ध हिन्दुओं की प्रतिक्रिया थी। लेकिन यह कहना सही नहीं है। इन विद्रोहों के अलग-अलग कारण थे लेकिन धार्मिक कारण कोई नहीं था।

राजपूतों के मामले में मूल समस्या उत्तराधिकार के मामले को लेकर थी। मराठों के मामले में समस्या स्थानीय स्वतंत्रता की थी। जाटों के विद्रोह के पीछे किसानों और भूमि से सम्बन्धित सवाल थे लेकिन जाटों की राजनैतिक महत्वाकांक्षायें बढ़ती चली गयीं और ये प्रथक् राज्य स्थापित करना चाहते थे। जाटों के संबंध में एक बात यह उल्लेखनीय है कि इनके विद्रोहों के समय स्थानीय हिन्दू जमीदारों ने मुगलों का साथ दिया। एक बार के विद्रोह को दबाने के लिए हिन्दू राजा बिशनसिंह को ही भेजा था। यदि जाटों के विद्रोहों के कारण धार्मिक होते तो ये हिन्दू राजा तथा जमींदार मुगलों का साथ क्यों देते?

प्रारंभ में सिक्खों का आंदोलन धार्मिक था, लेकिन धीरे-धीरे इस आन्दोलन ने राजनैतिक रूख अपना लिया। कालान्तर में सिक्खों ने सेना संगठित कर ली तथा ये भी स्वतंत्र राज्य की स्थापना चाहते थे।

औरंगजेब अपने राज्य में किसी भी ऐसी सैनिक शक्ति को उभरने से पहले ही नष्ट कर देना चाहता था जो अलग राज्य की स्थापना कर सके। इसी कारण उसे जाट, मराठा, अफगान तथा सिक्खों के साथ कई बार युद्ध लड़ने पड़े। वह किसी भी कीमत पर इनकी शक्ति को समाप्त कर देना चाहता था। सिक्खों के गुरु तेग बहादुर तथा गुरु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोविन्दसिंह के पुत्रों की हत्या के पीछे यही कारण था।

औरगंजेब के अंतिम दिनों में विद्रोह और अधिक हो गये थे। चूँकि अफगानों को छोड़कर शेष सभी विद्रोहों का नेतृत्व हिन्दूओं के हाथों में था, अत: देश के अधिकतर हिन्दुओं की भावनायें इन विद्रोहियों के पक्ष में तथा मुगलों के विरोध में होती चली गईं तथा मुगलों के प्रति नफरत पैदा करने के उद्देश्य से औरंगजेब को हिन्दू विरोधी कहा जाने लगा।

सन्दर्भ -

1. मध्यकालीन भारत, भाग - 2, प्रकाशक - रा.शै.अ.प्र. परिषद, नई दिल्ली
2. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, डा. प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
3. वही, पृ. 243
4. वही, पृ. 253
5. वही, पृ. 269
6. वही, पृ. 290
7. वही, पृ. 312

प्राप्त - 4.5.2000

श्री रायबहादुर ओंकारजी कस्तूरचन्द ट्रस्ट द्वारा 2 नये पुरस्कार स्थापित

रायबहादुर ओंकारजी कस्तूरचन्द ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा वर्ष 2000 से 2 वार्षिक पुरस्कारों की स्थापना का निर्णय लिया गया है। इन पुरस्कारों का विवरण निम्नवत् है -

1. **ज्ञानोदय ज्योतिष - तंत्र - मंत्र पुरस्कार** - यह पुरस्कार जैन परम्परा के अनुसार ज्योतिष - तंत्र - मंत्र के क्षेत्र में विगत पाँच वर्षों में किये गये मौलिक प्रकाशित/अप्रकाशित शोध कार्य हेतु प्रदान किया जायेगा।
2. **ज्ञानोदय आयुर्वेद पुरस्कार** - यह पुरस्कार जैन आयुर्वेद के क्षेत्र में विगत पाँच वर्षों में किये गये मौलिक प्रकाशित/अप्रकाशित शोध कार्य हेतु प्रदान किया जायेगा।

प्रत्येक पुरस्कार के अन्तर्गत रुपये 11,000/- की राशि, प्रशस्ति, शाल, श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा। कृपया अपने सम्पादित कार्य के पूर्ण विवरण सहित सादे कागज पर प्रस्ताव निम्न पते पर 31 दिसम्बर 2001 तक प्रेषित करें -

डॉ. अनुपम जैन
सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर - 452001
फोन : 0731 - 545421, 545744

पुरस्कारों का निर्णय एतदर्थ मनोनीत निर्णायक मंडल द्वारा किया जायेगा।

■ **अजितकुमारसिंह कासलीवाल**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर होने वाली शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 31 मार्च 2001 तक पुस्तकालय में 9000 महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं 1042 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ सम्मिलित हैं ही। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 350 पत्र - पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओंसे : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 - 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : 2. अपनी कृतियों (पुस्तकों / लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रन्थालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

31.3.01

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 51 - 56

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

रइधू रचित पोथी चित्र में जैन चित्रकला

■ डॉ. जया जैन*

भारत के हृदय स्थल पर स्थित उत्तरी मध्यप्रदेश के प्राचीनतम क्षेत्रों में से एक ग्वालियर क्षेत्र कई शताब्दियों से साहित्य, संगीत और कला का महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। प्राचीन काल से ही ग्वालियर क्षेत्र के साथ अनेकानेक साम्राज्यों, कई महत्वपूर्ण राजघरानों का समय - समय पर निकट का संबंध रहा है। परन्तु ग्वालियर क्षेत्र से भी कहीं अधिक ग्वालियर नगर की परम्पराओं को सुस्पष्ट स्वरूप देने तथा उन्हें सयत्न, सुदृढ़ बनाने में सबसे अधिक योगदान ग्वालियर के तोमर शासकों का रहा।[1] तोमरों का दिल्ली राज्य में अन्त होने के दो शताब्दी बाद ग्वालियर में तोमरों ने अपने स्वाधीन राज्य की नींव डाली।[2]ग्वालियर में स्वतंत्र सत्ता के संस्थापक वीरसिंह देव (1375 - 1400 ई.) हुए। वीरसिंह देव ने उस राजवंश की नींव डाली जिसने ग्वालियर दुर्ग पर लगभग सवासौ वर्षों तक राज्य किया।[3]

तौमर कालीन ग्वालियर में साहित्य चित्रकला और शिल्पकला अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँची थी। 14 वीं 15 वीं शताब्दी में ग्वालियर जैन कला की प्रखर गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र रहा, इस काल में पहाड़ी को काटकर विशाल जैन प्रतिमाओं का निर्माण हुआ तथा अनेकानेक जैन मूलपाठों की प्रतिलिपियाँ हुई।[5]

ग्वालियर के तोमरों की धार्मिक क्षेत्र में उदार नीति का प्रस्फुटन तोमर वंश के पराक्रमी राजा डूगरेन्द्रसिंह व कीर्तिसिंह के समय विशेष रूप से रहा।[5] डूगरेन्द्रसिंह (वि.सं. 1481) तोमर वंश के महानतम राजाओं में से थे। वे पराक्रमी भी थे और साहित्य कला, संगीत के आश्रयदाता भी। मित्रसैन अपने शिलालेख में जहाँ उन्हें युद्ध क्षेत्र में परमशूर कहा है, वहाँ अपने आश्रितों के लिये उन्हें कल्पवृक्ष के समान भी कहा है।[6]

डूगरेन्द्रसिंह तथा कीर्तिसिंह के राज्यकाल में ग्वालियर के जैन भट्टारकों ने जैन शास्त्रों का बहुत बड़ा संग्रह कराया था और अनेक दुर्लभ ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ कराई थीं।[7] डूगरेन्द्रसिंह के समय में जैन सम्प्रदायों को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

प्राचीनकाल में साहित्य लेखन व चित्रण की परम्परा भोजपत्र अथवा ताड़पत्र पर रहीं, ऐसी बहुत सी पाण्डुलिपियाँ आज भी उपलब्ध हैं। कागज के आविष्कार के साथ पाण्डुलिपियों के चित्रण में क्रांति आई एवं एक समृद्ध शैली का प्रारम्भ हुआ। सचित्र ग्रंथों की रचना विशेषकर जैन धर्म से अधिक संबंधित हैं। कागज का आधार मिलने पर चित्रों के विकास में उच्चस्तरीय परिवर्तन हुआ। कागज पर लिपिबद्ध की हुई 1346 ई. में लिखित सचित्र पाण्डुलिपि कल्पसूत्र हैं, जो लन्दन की इण्डिया लायब्रेरी में सुरक्षित हैं।[8] कागज की सचित्र पाण्डुलिपि की परम्परा ग्वालियर में भी प्रचलित रही है।[9] सचित्र पाण्डुलिपि के मूलपाठ का प्रणयन तोमर राजा डूगरेन्द्रसिंह के राज्याश्रित महाकवि पंडित रइधू द्वारा हुआ। पंडित रइधू का सम्पूर्ण जीवन जैन श्रेष्ठियों के आग्रह पर ग्रंथ लिखने, पूजा अर्चना में आचार्य का काम करने व प्रतिष्ठा हेतु प्रतिष्ठाचार्य के रूप में व्यतीत हुआ।[10] रइधू के दीक्षागुरु भट्टारक यशकीर्ति थे। मेघेश्वरचरित से ज्ञात होता है कि उनके आशीर्वाद से ही रइधू को विचक्षण प्रतिभा प्राप्त हुई थी। भट्टारक यशकीर्ति ने कहा - 'मेरे प्रसाद से तू विचक्षण हो जायेगा' और यह कहकर मंत्राक्षर किया। उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा से लगभग 33 ग्रन्थों का प्रणयन (1380 - 1480) किया था। जिनमें से 24 ग्रंथ उपलब्ध हैं।[12]

* एफ - 3, शासकीय आवास, कम्पू, ग्वालियर - 474 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. राजाराम जैन के अनुसार - महाकवि रइधू के उपलब्ध समस्त ग्रंथों में से तीन ग्रंथ सचित्र हैं - पासणाह चरिउ, संतिणाह चरिउ एवं जसहर चरिउ।[13]

इन तीन पाण्डुलिपियों के चित्र अपभ्रंश चित्रकला के प्रतिनिधि चित्र हैं। इन पोथी चित्रों में ग्रंथ लेखन एवं चित्रण में अनेक प्रयोग हुए - 1. ग्रंथ के पृष्ठ के पार्श्व में चित्रण एवं बीच में लेखन। 2. ग्रंथ के बीच में यत्र-तत्र चित्रण। 3. ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ के एक ओर लेखन और सामने चित्रण हैं। 4. ग्रंथ के पृष्ठ के ऊपरी भाग पर छन्द या पद लेखन एवं नीचे चित्रांकन हैं। उपर्युक्त ढंग से लिखित एवं चित्रित पृष्ठों को पुस्तकाकार रूप में ग्रंथित किया गया है, जिनसे किसी भी काव्य के क्रम का सहज ही ज्ञान हो सके।

1. **पासणाह चरिउ** – यह प्रति सचित्र है। इसमें प्रसंगानुसार तिरंगे, चौरंगे एवं बहुरंगे छोटे एवं बड़े सभी कुल मिलाकर 61 चित्र हैं।[14] यह प्रति तोमर कालीन ग्वालियर चित्रकला के उदाहरण प्रस्तुत करती है।

पासणाह चरिउ के चित्रों का संयोजन दक्षतापूर्ण है। यद्यपि इसकी रेखाऐं अपनी अधिकांश शक्ति खो चुकी हैं। इसका दुर्बल रेखांकन और चित्रण विशेष उल्लेखनीय नहीं है लेकिन चित्रों की शैली ने उनमें गत्याकता की भावना को संजोये रखा है।[15]

पासणाह चरिउ की पाण्डुलिपि (1442 ई. ग्वालियर) एक पत्र पर राजसभा का संचालन करता इन्द्र है। चित्र में इन्द्र के ऊपर छत्र लगा हुआ है, इन्द्र के पीछे एक पुरुष चवर ढुरा रहा है। इन्द्र के सामने तीन पुरुषाकृति हैं। जिनमें से दो खड़ी व एक बैठी हैं। चित्र के बायें तरफ ऊपर की ओर दो नारियों का बातचीत की मुद्रा में अंकन है। पुरुषों ने अधोवस्त्र, धोती व उत्तरीय कंधे पर डाला हुआ है। सिर पर मुकुट व कानों के कुण्डल हैं। नारी आकृति साड़ी पहने हुए है, जूड़ा बांधे हैं, कानों में कुण्डल व हाथों में चूड़ियां पहने हैं। चित्र के बायें ओर व ऊपर लेखन है।[16]

पासणाह चरिउ में एक चित्र चतुर्भजी सरस्वती संबंधी है। सरस्वती के दांये हाथ में पोथी, बायें हाथ में वीणा, दूसरे दायें हाथ में कमण्डलु एवं दूसरे बायें हाथ में माला है। चित्र की पृष्ठभूमि में एक तोरण द्वारा है। जिसके ऊर्ध्वभाग के मध्य में एक विशाल शिखर तथा उसके आसपास तीन-तीन छोटे शिखर अंकित हैं। उन पर दो पताकाऐं फहरा रही हैं।

सरस्वती के दायें ओर वाले चित्र में पांच व्यक्ति अंकित हैं। वे तीन एवं दो पंक्ति बनाये हुए हैं। डॉ. राजाराम जैन के अनुसार यह चित्र ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकार ने इसमें महाकवि रइधू व उनके गुरु एवं आश्रयदाता का चित्रण किया है।[17] पासणाह चरिउ के एक अन्य चित्र (नीचे) में भगवान पार्श्वनाथ को अपने परिचारकों के साथ दिखाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसमें एक पुरुषाकृति को चित्र के मध्य में छत्र के साथ घोड़े पर सवार दिखाया है। छत्र तीनों लोक में भगवान के साम्राज्य का द्योतक हैं। घोड़े के आगे-पीछे हाथियों पर सवार उनके परिचारक हैं। सबसे आगे व बीच में नगाड़े बजाते पुरुष हैं। एक अन्य पुरुष सबसे पीछे पैदल चल रहा है। हाथियों व घोड़ों में गति एवं सुडौलता स्पष्ट दिखाई दे रही है। पृष्ठभूमि लाल रंग की है। पुरुष को धोती व छोटा कुरता पहने दिखाया है। चित्र के ऊपर नीचे लेखन है।[18]

पासणाह-चरिउ की चित्रण शैली तथा चित्र संयोजन के समान दूसरी सचित्र पाण्डुलिपि जसहर-चरिउ की है।[19] जसहर चरिउ (1440-1450) पाण्डुलिपि के चित्र में राजा यशोधर का एक नर्तकी और संगीतकारों द्वारा मनोरंजन का दृश्य है, जिसमें दो संगीतज्ञ, एक नर्तकी, एक ढोलक वादक व एक शहनाई वादक की टोली है, एक अन्य पुरुष राजा यशोधर के पीछे चँवर डुरा रहे हैं। सम्पूर्ण चित्र में संगीत व नृत्य के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। पुरुष धोती व उत्तरीय पहने हैं। नर्तकी ने दक्षिण भारतीय साड़ी पहनी हुई है। दोनों हाथ नृत्य की मुद्रा में उपर उठाये हुए हैं। कानों में बड़े-बड़े कुण्डल गले में हार व हाथों में चूड़ियां पहने हैं।[20] जसहर चरिउ की एक पाण्डुलिपि में आदिनाथ भगवान का चित्र है। आदिनाथ भगवान दिगम्बर पद्मासन मुद्रा में है। उनकी वेदिका पर उनका लांछन बैल मध्य में बना अुआ है व उसके दोनों तरफ शेर का अंकन है, आदिनाथ भगवान को तीन छत्र, पुष्पवृष्टि, चँवर डुराते हुए देवगण आदि अष्टप्रतिहार्य चिन्हों से युक्त दर्शाया है। देवगण के एक हाथ में चँवर व दूसरे हाथ में मोती की माला है, सिर पर मुकुट है, वह धोती उत्तरीय पहने है। चित्र सुन्दर है अन्य चित्रों की अपेक्षा आकृतियाँ प्रमाणयुक्त हैं। चित्र की पृष्ठभूमि में उपर शिखर बने हैं जिन पर पताकाऐं फहरा रही हैं। चित्र के दाऐं-बाऐं दो स्तम्भ हैं जिनके ऊपर गुंबद हैं। जिससे यह देवालय का चित्र प्रतीत होता है।

जसहर चरिउ – जसहर चरिउ के एक चित्र में दिगम्बर मुनि द्वारा राजपुरुष को उपदेश देते दर्शाया है। राजसी पोषाक, आभूषण उत्तरीय पहने राजपुरुष को दिखाया गया है। मुनि ऊंची चौकी पर बैठे हैं। चौकी पर दो शेर का अंकन है, मुनि के सामने शास्त्र रहल पर रखे हैं। राजसी पुरुष हाथ जोड़े, घुटने मोड़े हुए श्रद्धा भाव से नीचे बैठा हुआ है। चित्र के मध्य में ऊपर कमण्डलु व पीछी धार्मिक उपकरण बनाये हैं। चित्र के दायें बायें सिरे पर दो हस्थी स्तम्भ बने हैं जिनके ऊपर गुम्बद है, इससे यह चैत्यालय सा प्रतीत होता है। पृष्ठभूमि लाल रंग से बनाई गई है। ऊपर हरे रंग का प्रयोग किया है। चित्र में दायें लेखन है। यह चित्र भी अनुपातिक व संयोजन की दृष्टि से उच्चकोटि का है।

जसहर चरिउ के एक पत्र लगभग (1454 ई.) के चित्र में दिगम्बर मुनि सुदत्त को उपदेश देते हुए दर्शाया गया है, राज परिवार के सदस्य हैं। उनके सिर पर मुकुट है (देखें चित्र) एक अन्य चित्र में दो राजपुरुष हाथ जोड़े मुनिश्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सम्मुख बैठे हैं व कथानुसार अभयमति और अभयरूचि मुनिश्री के दर्शन करते ही अचेत हो गये। जिन्हें अचेत अवस्था में लेटे दिखाया है। अभयमति को दोनों हाथों से पकड़े एक राज परिवार की स्त्री है, उनके पीछे तीन अन्य स्त्रियां हैं, जिनमें से एक चँवर ढुरा रही है व अन्य दो स्त्रियां आपस में विचार विमर्श करते दिखाई देती हैं। वे चारों स्त्रियां सफेद लाल धारी की साड़ी पहने है। राजपुरुषों ने सफेद लालधारी व छींटदार धोती पहनी है व दाऐं कंधे पर उत्तरीय डाला हुआ है। मुनिश्री के पार्श्व में एक वृक्ष है उसको तने सहित अंदर की ओर झुका बताया है। छोटी-छोटी पत्तियों को मिलाकर एक बड़े पत्तेनुमा वृक्ष का अंकन किया गया चित्र के ऊपरी भाग में आकाश में तीन लहरे गहरे नीले सफेद, हल्के नीले रंग में दिखाई है। जो नदी सी प्रतीत होती है। चित्र के ऊपर लेखन हैं।[21] एक अन्य चित्र श्रृंगार का है जिसमें एक दासी रानी को शीशा दिखा रही है व दूसरी श्रृंगार थाली पकड़े हैं। आकृति अनुपातिक दृष्टि से बैडोल है।

जसहर चरिउ की मोजमाबाद प्रति में कुल मिलाकर छोटे बड़े 63 चित्र हैं तथा ब्यावर प्रति में लगभग 70 चित्र हैं। इनमें से कुछ चित्रों को छोड़ अनुपातिक व संयोजन की दृष्टि से उच्च स्तर के हैं।

संतिणा चरिउ (शांतिनाथ चरिउ) - संतिणाह चरिउ की मात्र एक ही प्रति उपलब्ध है और वह भी त्रुटित है, जो अंश प्राप्त हैं। उसमें कुल मिलाकर 48 रंगीन चित्र हैं।[22]

संतिणा चरिउ की पाण्डुलिपि के एक चित्र (1426-1400 ई.) में शांतिनाथ भगवान को परिचारकों के साथ राजसी वेशभूषा में दिखाया है। साम्राज्य का द्योतक छत्र उनके ऊपर सुशोभित है। सिंहासन चौकी पर बैठे हैं। उनके सामने उनके दो परिचारक जिनमें से एक बैठा है व दूसरा दोनों हाथ आगे बांधे खड़ा है। सम्पूर्ण पृष्ठभूमि लाल रंग की है। वेशभूषा तंग पजामा व छोटा कुर्ता है दायें कंधे पर से बायें कंधे पर उत्तरीय फहरा रहा है। सिर पर साफा है। सामान्यतः वेशभूषा फारसी शैली से प्रभावित है। आनुपातिक दृष्टि से आकृति बेडोल सी है लेकिन मुद्राओं में सजीवता है।[23]

इन पोथी चित्रों को देखने से ज्ञात होता है कि पासणाह चरिउ व जसहर चरिउ दोनों पाण्डुलिपियां रंगों के चयन, उन पर सर्वत्र की गई हल्के पीले रंग की वार्निश तथा विषय संयोजन आदि एक ही शैलीगत मान्यताओं से अनुशासित हैं। नारियों को साड़ी और पुरुषों को प्रायः धोती एवं उत्तरीय पहने दर्शाया है। दोनों पाण्डुलिपियों के दृश्य चित्रों के अंकन में किसी प्रकार का कोई विशेष अंतर नहीं है।

इन दोनों पाण्डुलिपियों की शैली से थोड़ा भिन्न लेकिन इन्हीं की परम्परा में चित्रित संतिणाह चरिउ पाण्डुलिपि के चित्रों की रंग योजना में हल्के रंगाभासों को प्राथमिकता दी गई है। अनुपातिक दृष्टि से आकृति का अंकन सही नहीं है, सिर शरीर के अनुपात में बड़ा, आंखें उभरी बनाई गई है। पहनावे में तंग पजामा, छोटा कुर्ता, सिर पर साफा, इसके साथ पटका एवं उत्तरीय यह वेषभूषा सिकन्दर नामा भारत कला भवन में सुरक्षित, लौर चंदा एवं तुबिन्गेन के हज्मा-नामा की पाण्डुलिपि के चित्रों में दर्शायी वेशभूषा के मूलरूप से मिलती जुलती है।[24]

रइधू रचित इन पोथी चित्रों में पुरुष व नारी अंकन के साथ प्राकृतिक चित्रण भी किया गया है। मानवाकृतियों में जहाँ जड़ता एवं स्थूलता है, वहीं धीरे-धीरे आकृति अंकन अधिक सूक्ष्मतर व कौशल से हुआ।[25] मानवाकृतियों के चेहरे में नाक नुकीली व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंखों को तीखा एवं निश्चित स्थान से बाहर तक निकाला है, पुतलियां छोटे व कटाक्ष रेखा कर्णपर्यन्त अंकित की गई हैं। प्राय: सवा चश्म चेहरे हैं। कान गोलाकार छोटे बनाये गये हैं। कटि भाग सामान्य तथा कृश एवं ग्रीवा पतली है। नारियों तथा कुछ पुरुषाकृतियों को आभूषणों से अलंकृत किया गया है। कानों में बड़े चक्राकार विशाल कर्णफल, हाथों में चूड़ियां, नासिकों में मोती की छोटी पॉगड़ी एवं भाल पर पर टीका भी अंकित है। चित्रों की रेखायें गहरी, पतली और कहीं - कहीं मोटी हैं, किन्तु वे सर्वत्र सधी हुई हैं।

पोथी चित्रों को रंगों द्वारा और अधिक आकर्षक बनाया है। सर्वत्र गहरे नीले, लाल, हरे, पीले व सफेद रंग का प्रयोग किया गया है। रंगों के प्रयोग में मौलिकता का ध्यान रखा गया है। रंगों के प्रयोग के विषय में डॉ. राजाराम जी लिखते हैं - चित्रों में प्राय: मौलिक रंगों का ही प्रयोग है जैसे लाल, पीला, हरा, काला, सफेद। चित्रों की पृष्ठभूमि में लाल एवं पीले रंगों का प्रयोग है, कहीं - कहीं हरे रंग का भी प्रयोग है। रंग बहुत गहरे व चमकीले हैं।[26] जैन अपभ्रंश शैली के इन पाँचों रंगों का जैन धर्म में आध्यात्मिक व प्रतीकात्मक अर्थ है। यह पाँच रंग श्वेत, लाल, पीला, हरा, गहरा नीला या काला क्रमश: पंचपरमेष्ठी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु के गुणों के प्रतीकात्मक रंग है।[27] वहीं यह पांच रंग जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर के शरीर वर्ण भी हैं। जिनका उल्लेख हमें जैन शास्त्रों में देखने को मिलता है।[28] चौबीस तीर्थंकर के वर्ण स्वरूप दोहा प्रसिद्ध है -

दो गोरे, दो सांवले, दो हरियल, दो लाल,
सोलह कंचन वर्ण वंदो आठों धाम।

अर्थात् दो श्वेत रंग के हैं, दो श्याम रंग के हैं, दो लाल रंग के सोलह तीर्थंकर का रंग पीले तपते स्वर्ण के समान है। इन पांच रंगों का हमारे आंतरिक एवं बाह्य विकास में महत्वपूर्ण योगदान है जिनका लौकिक व पारलौकिक जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

अपभ्रंश शैली के सबसे उत्कृष्ट उदाहरण कागज की पोथियों पासणाह चरिउ, जसहर चरिउ व संतिणाह चरिउ में देखने को मिलते हैं। इन पोथी चित्रों में अलंकरण एवं बाह्य सौन्दर्य के स्थान पर आध्यात्मिकता भावना एवं धर्मवृत्ति की छाप मुख्यतया स्पष्ट रूप से दर्शायी गई धार्मिक भावना की तुष्टि हेतु चित्रकारों ने काव्य को आधार बनाकर चित्रण किया है। आश्रयदाताओं के निर्देशानुसार काव्य चित्रण पर कलाकार यश और अर्थ दोनों उपार्जित करते रहे।[29]

पोथी चित्र के विषय में डॉ. रामनाथ का मत है कि यह स्मरणीय है कि चित्रित काव्य की प्रतियां विशुद्ध धार्मिक भावना से प्रेरित होकर बनाई जाती थी। धनवान लोग इन्हें बनवाकर जैन साधुओं को समर्पित कर देते थे। इस कार्य को पुण्य कार्य माना जाता था।[30]

तोमर कालीन महाकवि रइधू के यह सचित्र पोथी चित्र कला जगत की अमूल्य निधि है। यह दुर्भाग्य की बात है कि ग्वालियर राज्य में लिखित एवं चित्रित ग्रंथ ग्वालियर से बाहर सुरक्षित है। यह पोथी चित्र तत्कालीन समय में चित्रकला में विकास को दर्शाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ –

1. द्विवेदी, हरिहर निवास, तोमरों का इतिहास, विद्या मन्दिर, मुरार - ग्वालियर, 1979, पृ. 4
2. वही, पृ. 7
3. वही, पृ. 22
4. घोष अमलानंद, जैन कला एवं स्थापत्य, खंड - 3, भारतीय ज्ञानपीठ, 1975, पृ. 427, 428
5. द्विवेदी, हरिहर निवास, तोमरों का इतिहास, विद्या मन्दिर, मुरार - ग्वालियर, 1979, पृ. 426
6. वही, पृ. 87
7. वही, पृ. 427
8. घोष, अमलानंद, जैन कला एवं स्थापत्य, भारतीय ज्ञानपीठ, 1975, खंड - 3, पृ. 414
9. वही, पृ. 427
10. द्विवेदी, हरिहर निवास, तोमरों का इतिहास, विद्या मन्दिर, मुरार - ग्वालियर, 1979, पृ. 110
11. वही, पृ. 109
12. भाण्ड लक्ष्मण, ग्वालियर कलम, भोपाल मार्केट प्रोजेक्शन प्रा.लि., भोपाल, पृ. 28
13. जैन राजाराम, रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, शिक्षा विभाग, बिहार, 1974, पृ. 9
14. वही, भूमिका, पृ. 1
15. घोष अमलानंद, जैन कला एवं स्थापत्य, खंड - 3, भारतीय ज्ञानपीठ, 1975, पृ. 428
16. वही, चित्र 280 (क)
17. जैन राजाराम, रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, शिक्षा विभाग, बिहार, 1974, पृ. 10
18. घोष अमलानंद, जैन कला एवं स्थापत्य, खंड - 3, चित्र, भारतीय ज्ञानपीठ, 1975, पृ. 32
19. वही, पृ. 429
20. वही, चित्र 280 (ख)
21. वही, चित्र 34
22. जैन राजाराम, रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, शिक्षा विभाग, बिहार, 1974, पृ. 9
23. घोष अमलानंद, जैन कला एवं स्थापत्य, खंड - 3, भारतीय ज्ञानपीठ, 1975, चित्र 35
24. वही, पृ. 429, 430
25. जैन हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, म.प्र. साहित्य परिषद, भोपाल, 1962, पृ. 309
26. जैन राजाराम, रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, शिक्षा विभाग, बिहार, 1974, पृ. 11
27. जैन रवीन्द्र कुमार, महामंत्र णमोकार वैज्ञानिक अन्वेषण, केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट, दिल्ली, 1993, पृ. 60.
28. वही, पृ. 63
29. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्णकाव्य, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1973, पृ. 15
30. रामनाथ, मध्यकालीन भारतीय कलाऐं और उनका विकास, पृ. 4

प्राप्त – **17.5.2000**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vol. 13, No. 2, April 2001, 57-62

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

SEARCHING FOR JAINA IDENTITY IN NORTH AMERICA

■ Dr. S.A. Bhuvenendra Kumar *

Growing North American socio-religious integration is a fact of life. As it progresses, Jainas are going to be confronted time and again with the question of whether it makes sense to keep their religious identity. Particularly so since their traditional authority figuratively holds no sway in the so-called North American 'horizontal society' which tends to focus on identity of group manifesting through mass culture. The virtual reality of the Jaina sense of identity in this environment is that socio-culture and religious traditional hierarchies no longer rule allowing it almost to the verge of irretrievable condition. The Jaina vertical authority that naturally ties parents, community and peers together has weakened, causing withering and lack of propensity to reach out to its various elements for creating or retaining a sense of Jaina identity in North America.

Mobility in the context of Jaina community of North America is accelarating literally and figuralively cultural homogenization is in effect due to the absence of Jaina vertical moorings of visual and hierarectual tradition. To lose these vertical moorings in an exposed and expanded new environment, the boundaries of primary Jaina identity will transcend its socio-cultural and religious 'externals' and as well its physico-physical 'modes'. Sense of identity therefore cannot be seen or chosen as matter of choice. The feeling of choice and control therefore largely will become an illusion at an enormous social and religious loss. This loss may eventually shatter the general belief : 'the right and power to construct life, a meaning and an identity.'

Growing individualism in terms of real stability is a problem of an alienated when efficacy of traditional institutions and church becomes stagnant, connecting very little to the events occuring in and around it. Therefore, it becomes necessary for the Jaina voices to ask quietly whether the time is not ripe to think about preparation for a tangible and ubiquitous symbol of 'Jain Community' within the context of circumbient North American Society?

Who will and how will the question be answered by Jainas? They simply cannot afford to accept the proposition that the 'community' is an article of faith to define and develop a sense of identity. The Jain identity in North America - whether to continue pursuing as it exists in the sub-continental South Asia is a matter of purely rarefied policy Jain institutions have to make

* Editor-Jinamanjari, 4665, Moccasin Trail, Mississauga, Intario, Cananda-14z2w5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

in the new environs. Neither Jaina individuals nor their organizations can ignore the fact that their 'community', first and foremost, is an instrument of their faith and its associated religiosity.

Jaina family life and living are primary constituents of the senses of its identity. The Jaina family thus is all about absorbing and observing socio - religious matters fixed on genuine faith, knowledge and conduct. Their physical and psychological importance cannot be denied. Noted sociologist Dr. Vilas A. Sangave of Kolhapur University, India has shown that the Jaina religious life forms a distinct and separate group with a homogeneous practices, and in social matters, Jainas do not form a separate entity.[1] The Jaina family though underscores recognition of individual and collective freedom, its approach to maintain its identity is undiminished.

The fact of the matter, therefore, is that given a choice - articulated by defining instrument to manifest Jainas not only for reason of identity, but also make a case for their identity. The issue of Jaina identity and search for it in North America may not be confusing but it is understandably a question apperas to be in the minds of many, for they often address it passionately. They appear to look at the question from the point of 'community' in North American landscape.

The first systematic Jaina survey from a sociological perspective was conducted in sixties by Vilas Sangave.[2] A similar Jaina Survey in North America, largest of its kind, was conducted in 1994 - 1995. It sought to solicit and collect general data on how the Jainas in North America regard their precepts and practices, and how their institutions must play a role in partnership with the larger society for the promotion of Jainism as a world religion. The survey revealed the following data.[3]

- A large majority of the questionnaire respondents opted joining their religious organization over their linguistic choice.
- A majority expressed Jaina culture as distinct from others strata of Indian cultures. While one respondent noted 'no common Indian culture', another indicated 'Jaina culture is a mosaic with similarities and differences' and nine respondents recognized no Jaina culture distinctness, as a whole.
- Almost all returns recommonded impart of early Jaina education to children.
- Same level of interest was recommonded to the question of teaching Jainism at higher academic institutions.
- On the main stream Vegetarian, Animal Rights and Environment Organizations, respondents identified them with Jaina doctrinal dictums, and hence suggested the need to develop close relationship with these organization in their endeavours.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- Most respndents rated the activities of their Jaina organizations as satisfactory, but gave a negative rating for not being well directed and ill-equipped to leave a legacy to their children.

This data in all possibility thus raises issues about charectarstic features and identity - on sociological and anthropological lines - of the Jainas within their collective understanding and also within the setting of North America. In this regard, the term - 'Jaina Community' - as explained by British Social anthropologists Carrithers and Humprey[4] - simply represents social reality of ethnic, religious or other divisions in a complex society. Furthermore, as Ninian Smart observes that 'religion is not something that one can see, (and however) it is true that their are temples, ceremonies, religious art (which) can be seen, (and) their significance needs to be approached through the inner life of those who use their externals'.[5] As such, Jainism as a religion falls within the academic and scholastic deliberations with a model structure. Thus, the religious charecterstics of Jainism is manifested structurally in various forms as found in its Śrāvakācāra texts that prescribe acts of daily essentials, and other texts that treat religious duties such as fasting, rites of passage, conscience of life, approach to life and liberation. These various characterstics thus qualify to form the inner life of the Jains, as opposed to the 'externals', which in the Jaina case, become somewhat murky in the larger context of subcontinental South Asia Complex as well in the circumbient North American society.

The definitive and distinguishing identity of the Jainas therefore must be fathomed from their 'inner life' - a stratum of interdependent religio-social and psycho-social countenance - categorized under two substrata ; conscious substratum and social substratum.

The conscious substratum, with emotion and expressive forms connected to religious and moral virtues, gives rise to features of self-defining identity. Upon querying, the conscious generally reveals its self-defining identity. On the other rhand, the social substratum is amorphous and it genarally lacks any definite self-defining identity specially in the context of sub-continental South Asia Complex and circumbient North American Society, where its nature is describable only from external inferences.

So conscious substratum lakes a self-defining expression. Could this alone satisfy? Does a simple saying 'I am a Jaina' would fully and completely reveal one's Jaina identity? In fact it does not in the larger North American circumbient society. A case in point may be mentioned in this context. Professor K.I. Koppedrayer of the University of Wilfred Laurier, Canada found that her students surprisingly pose a question, 'Jainism Hum? What's that?' She notes that 'many (students) have never been heard of Jaina tradition or anything about it before taking

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

my course. And when first introduced to Jainism, they tend (ed) initially to dismiss it as obscure. Thankfully, that is only their initial perception, but that reaction poses a formidable barrier to penetrate'.[6]

Many Jainas may have faced such questions in their personal encounters in this larger circumbient North American society where Jainas as 'a community' is very small. It is not uncommon to hear a question, 'What religion, you belong to?' posed by a colleague at work, a neighbour, or a friend from within the Indian or South Indian groups. Whereas colleague or a neighbour poses such a question to a Jaina, it may not be surprising. But, it is also no surprise to hear from a South Asian compatriot similar question : What is Jainism or Jain-ness? In all probability, the compatriot would declare that Jainism is a part or off-shoot of his religion. And perhaps Jaina religion may otherwise would be considered and treated as unimportant because of their social and other cultural intercourse. These conditions therefore have compounded the issue of Jaina identity in North America.

Such a compounding Jaina identity issue was discussed in a Toroto (Canada) social gathering, a few years ago. The gathering was mostly of Jaina families, a few of which were mixed - Jaina and Hindu by marriage, a Hindu husband with Jaina spouse and three Jaina brothers who claimed Jaina ancestry passed on to them from their mother, a Hindu married into a Jain family. In the discussion of their respective religions, a question was raised - Which is older, Hinduism or Jainism? The brothers made claims of their Jainness and argued in favour of independent religiosity of Jainism both in structure and antiquity. They reasoned that the term Hindu is a generic word coined by foreigners who crossed Indus River into India, and over the years, the English officiated and affixed very loosened expression of Hindu and Hinduism to a brecciated stock of communities of people. On the lingua franca front, they pointed that Prakrit language is anterior to Sanskrita. A consensus however was reached to the fact that Prakrita was the language of the Vedas. It was also noted that pre-Aryan history of ancient India was of Sramaṇa culture. Further they contended that Sramaṇa religiosity and culture have influenced the vedics to espouse ahiṁsā doctrine of the Sramaṇas in order to harmonize Aryan ritualistic performenses and personal behavior.[5]

The above incident occuring in North America points to the fact that a question looms large on the psyche - 'inner life' - of both the Hindus and the Jainas. The Jainas in the new landscape of America, as the above incident suggests, may be making statements wherever and whenever possible about their identity and religion. What has not presented by them is that they hold distinguishly a different set of doctrines and philosophy from hoary ancient times to the present setting. Furthermore, they have yet to present a Jaina portrait

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

of socio-anthropologic and psycho-physical dimension. To be precise, a collective and clear physiomorphic form has not been presented.

The 'externals' and inner conscince' of the Jainistic religiosity and philosophy as noted already must distinclively amplify the tone of the medium the Jainas employ by living the Jainish way and communicate the same to the circunbient society in an intellectual and effective dialogue, discussion and deliberation.

From the hoary past of their history to the present, Jainas have successfully and distinctly defined their identity in the sub-continental South Asia context, and in the circumbient North America landscape, their skill and effect to communicate with and within this lager society, apart from their religiousity and philosophy, must duly be employed to express : What is meant to be Jaina? What a Jaina is?

In their history whenever there was a need or a dire circumstance, Jainas have done a splendid job in defining their distictness, their Jaina identity, and their Jainness. It has been demonstrated by their saints, scholars and philosophers in three marked periods - Agamic (560 B.C. to 200 A.D.), Philosophic (200 A.D. to 800 A.D.) and Posterior (800 A.D.....onwards).[7] During the Posterior Period, the independent Jainness as well as their Jaina identity were demostrated again and again by Jinasena-I and Somadeva, who crystallized and developed template and terms for Jain identity and Jainness based on socio-religious and cultural perspective. Their works therefore became not only important treatises on Jainism, but also important vehicle to communicate with the circumbeint society in distiguising Jainism and Jainness. Therefore, it is imperative that the faith and its Jaina identity must be brought to the forefront - as Jainas have always historically accomplished - in North America. The Jainas themselves must attempt the presentation of a collective and comprehensive physiomorphic portrait, underlined by socio-anthropological, physical and physical traits. To this effect, Jaina communication as well as interaction with the circumbient society must take priority from its secular philosophic approach and to address the question of the faith and the Jaina identity. More importantly Jaina themselves should take lead to ward off the misconception the outsiders have about the Jaina faith or Jaina identity.

The falls convergence is to sit back - lulled by inaction of the institutions or individuals. It must be acknowledged that there exists a vaccum in addressing the question of Jaina identity in North America as seen in the foregone pages. Whatever the choice is, there is nothing quite like being on the ground communicating and defining the 'community' within the circumbient society. The faith and its identity must be properly presented to stand and be counted among the religions of the world.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Notes :-

1. Vilas A. Sangave, *Jaina Community - A Social Survey*, p. 409, Popular Publication, Bombay, 1980.
2. Ibid.
3. See my book, *Jainism in America*, pp. 113-120, Jaina Humanities Press, 1996 for a close general review of the aspects of social, cultural and religious understanding the Jains in North America hold.
4. Micheal Carrithers and Caroline Humphrey very clearly explain the conditions under which the concept is designed. See p. 6 *Assembly of Listeners in Jain Society*, Cambrig dge , Cambridge University, 1991.
5. Ninian Smart, *The Religious Experience of Mankind*, pp. 182-186, NY, Charles Scibners, 1969, provide excellent exposition and argument on such criteria that one may further go in detail.
6. K.I. Koppedrayer, *A Review of the Treatment of Jainism in Works on World Religions* in Jinamanjari, pp. 1-16, bi-annual journal of the Brahmi Jain Society of USA and Canada, Vol. 9, No.1, April 1994.
7. J. P. Jain clearly gives a brief overview of these synenegic transformation brought to bear on the Vedic theme and quite eloquently puts forth the view that Jainism along the way progressively developed in connection with the Vedic Brahmanism. See his works - *Religion and Culture of the Jainas*. Delhi, Bhartiya Jñānapīth, 1977 and *The Jaina Sources of the History of Ancient India*, Delhi, Munshiram Manoharlal, 1984. For details also see, Bhagchandra Jain, *Jaina Logic*, p.i., Madras, University of Madras, 1992.

Received : 5.7.2000

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

Vol. 13, No. 2, April 2001, 63-69

Conflict Resolution Through Non-Violence in Action - The Jaina Approach*

■ Dr. Narendra P. Jain **

Welcome Opportunity in the Midst of Formidable Challenges

World's religious and spiritual leaders coming together at the Millennium Peace Summit at the United Nations signals a welcome opportunity for initiating a collective politico-spiritual endeavour to move towards durable world peace, inter-faith harmony, healthier ecology and more compassionate interdependence among humanity and other living beings.

The task of implementing a global agenda for peace through Non-violence is, indeed, formidable given egocentric attitudes of nation states, play of power politics, unbridled arms race and continuing conflicts at global, regional and ethnic levels. Religious functioning largely within the narrow confines of orthodoxy and self-centred focus are being misused by fanatics to fuel religious and communal conflicts.

Exploitative violence and competitive struggle for control by human has eroded, polluted and depleted nature's resource base in land, water, forests and minerals. Global network of anti-development lobbies continue to block, delay or derail the process of growth in developing countries thereby creating an environment of frustration and tention in the midst of poverty and backwardness.

The challenge before the summit is not merely to adopt a unanimous Declaration on Tolerance and Non-violence, but even more to open the doors for a concerted and sustained world-wide synergic effort to replace conflict and confrontation by synthesis and conciliation, and exploitation by equity and fair play.

Need to Usher in all Pervading Culture of Non-violence

Patch-work solution would not do. Wars will only beget wars and durable peace - both inner and outer will remain elusive. What the world community needs is a all-pervading culture of non-violence for strenthening the foundation of peace and harmony and overcoming hostility, mistrust and greed.

2600 years ago, Lord Mahavira, Jaina Prophet (Tirthankara) called for practice of non-violence in action in all aspects of individual and community

---

* Presensted in Millennium Peace Summit of Religious & Spiritual Leaders United Nations, New York, August 28-31, 2000

** Former Secretary, Ministry of External Affairs, India and Ambassador to E.U., U.N., Nepal, Mexico, Belgium.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

life. He preached a simple yet comprehensive culture of non-violence :

> *'There is nothing so small and subtle as the atom nor any element as vast as space. Similarly there is no quality of soul more subtle than non-violence and no virtue of spirit greater than reverence for life.'*

He also emphasised :

> *'He who himself hurts the creatures or gets them hurt by others, augments the world's hostility towards himself.'*

Late Acharya Sushil Kumarji, the renowned Jaina monk while launching a Global Movement for Non-violence at the U.N. Earth Summit in 1992 at Rio de Janiero (Brazil) observed :

> *'The dawn of non-violence shall usher in an era of peaceful coexistence where the oneness of all religious becomes the foundation stone of the oneness of humanity.'*

Attitudinal Transformation :

The first step for successful and effective programme of non-violence in action is attitudinal transformation at individual and collective levels in favour of lasting peace.

Jaina philosophy offers a rational approach through the medium of :

Right Perception	:	Samyak Darśana
Right Knowledge	:	Samyak Jñāna
Right Conduct	:	Samyak Cāritra

This rational approach stems from the Jaina life-ethics of ***'Parasparopgrahojīvā-nam'*** viz., recognising mutually supportive co-existence of all forms of life, respecting dignity, sanctity and integrity of all living creatures and promoting reverence for all life.

The inspiring force behind this life-ethics is the Jaina principle and practice of **Non-violence** *(AHIMSĀ)* reinforced by and in conjunction with **Non-absolutism** (*Anekānta* or tolerance of other view points) and **Non-possession** (voluntary restaint and abstinence - *Aparigraha)*. The three together constitute a compassionate culture of thought and action which can be universally adopted and can provide a nucleus for inter-faith cooperation.

It was a happy augury that Parliament of World's Religious meeting in Chicago (U.S.A.) in 1993 after an interval of a century unambiguously recognised

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'Non-violence as an irrevocable doctrine in its declaration on a global ethic'.

Now is the time to move further and initiate steps on following times :

(1) United Nations should give a lead by including in the Preamble of its Charter the objective of spreading globally the culture of Non-violence among all living Species and Nature. Mere prevention of war or peaceful settlement of disputes at the political level will not usher in peace in its fulsome vibrant content. Alongside whereever possible national parliaments should include in the national constitutions a clear reference to the desirability of promoting non-violence.

(2) Such a reference to non-violence would not only be symbolic but also substantive. And to build up the momentum for it, religious and spiritual leaders should lend their full support. This summit should appeal to the U.N. to consider this proposal favourably and initiate required procedural formalities.

(3) World-wide education in the priciples of non-violence and training in the practice of non-violent techniques and strategies is of paramount importance. Under the direction of Rev. Acharya Mahapragya (successor of Acharya Tulsi), Head of the Terapantha Svetambara sect of Jain community, life science courses have been designed by Vishwa Bharti University for different age groups in school and Colleges. It has turned out to be a popular and secular programme all over India for the orientation of teachers. Text books have also been prepared.

UNESCO in collaboration with Institute of Jainolgy, London and in consultation with institutions like Vishwa Bharti University, Ladnun (India) could design similar training programmes in non-violent life ethics. Such programmes where tried have succeeded in inculcating among both teachers and pupils the spirit of dedication, devotion, discipline, tolerance, honesty, responsibility, realisation, broader outlook and vision. These qualities would develop a growing temper for peace and non-violence in the society.

Prior to each General Assembly session, it would be useful to organise summer seminars & workshops on non-violence in New York and Geneva for U.N. delegates. During U.N. General Assembly session also week-end seminars could be arranged for national deligates who include members of parliament as well. This has been tried out with encouraging results at Siddhachalam Jaina Temple centre in New Jerssey (U.S.A.). Such seminars could be organised by all U.N. specialised agencies as well as regional

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

organisations like the ESCAP. Such seminars will promote closer contact and interaction of diplomats with faith leaders and workers. Along side courses and workshops on meditation, voluntary self-absitinence and tolerance would prove enormously useful.

UNESCO could usefully bring out literature in all major world languages on the success stones of non-violence in action. Following are some illustrative examples which show how a determined individual or a small dedicated group of persons can build up a powerful movement of non-violence and peace.

(a) When the Indian Emperor Ashoka the Great saw the horrors of war, he embraced Buddhism and became a total votary of non-violence. His enduring success in spreading Buddhist religion and its compassionate non-violent philosophy to Sri Lanka, China, Japan, Mangolia, Cambodia, Laos and other south east Asian countries proved his point that 'victories of peace are more permanent than those of war'.

(b) Mahatma gandhi symbolised the courage of non-violence, and he successfully used non-violence to organise an effective mass struggle to secure India's freedom from British colonial rule without armed conflict and by using persuasive methods of peaceful resistance and non-cooperation (Satyāgraha). Gandhiji was deeply inspired ethically and spiritually by principles of Jainism in his adolescent years which left a deep insprint on his mind and heart.

Simultaniously he brought in socio-economic changes in the Indian socirty in a non-violent manner. This earned him the title of Mahatma (Saint). Khādī (hand spun and woven cloth) became the symbol of freedom from colonial economic exploitation as well as of self-reliance and self-determination. Earlier Gandhiji had raised his voice with courage and resolve against racial discrimination in South Africa and stood his ground even when he was thrown out of a first class train compartment.

His associate Acharya Binoba Bhave also achieved the miracle of 'Bhūdāna Movement' (land gift movement) by persuading land lords to voluntarily pass the ownership of their lands to the landless farmers.

Martin Luther King (Jr.) followed Gandhiji's path and waged a peaceful struggle in U.S.A. against racism and racial discrimination. Dr. Martin Luther King (Jr.) observed :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

' I refuse to accept the view that mankind is so tragically bound to the starless midnight of racism and war that the bright day break of peace and brotherhood can never become a reality. I have the audacity to believe that peoples everywhere can have three meals a day for their bodies, education and culture for their minds and dignity, equality and freedom for their spirits. I still believe that we shall overcome.'

(3) Let us Practice and Not Merely Preach -

(1) U.N. support for spreading world-wide culture of non-violence would be worthwhile only if different faith communities start practising it at grass root levels and make a success of inter-faith cooperation in this sphere.

This would call for curbing inter-faith violence and settling religious differences through peaceful interaction, give and take, and conciliation. There are innumerable opportunities for such successful experiments to be taken up even within different sects of the same religion. Natinal inter-faith committees could do a lot of useful work in this field.

(2) Merely setting up an Advisory Council of Religious & Spiritual Leaders at U.N. Head Quarters would not suffice.

Religious Leaders need to come out more actively at national and local levels in the field of promoting social welfare, providing distress relief, mitigating ecological disasters, stimulating communal harmany and so on. There has been talk of a Saints brigade - a white corps or whatever. This needs to be taken up more earnestly in all the continents as part of forging inter-faith unity and cooperation. Courage shown by spiritual leaders would pay rich dividents in creating a climate of greater acceptability of the compassionate principles of non-violence, peace harmony and equaminity.

Mother Terasa's work in different continents provides an example. She nursed the dying, she brought food with love to the poor, she practised and advocated eliminating food wastage. Service to the needy became her faith.

Jaina community in India, Africa and elsewhere has set up a chain of charitable hospitals for the poor and the needy, running many educational institutions and health services. In India in many places Jainas have organised

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

bird clinics and cow protection centres. In all Jaina pilgrimage centres on hillocks, afforestation work is being constantly pursued. Such social upliftment programmes need to be taken up at grass roots levels in rural and urban areas to cater to the basic needs of people. Peace cannot be build up on empty stomach, ailing bodies or stressed minds.

(4) **At Peace with Nature**

Conflict transformation would acquire firmer roots also when humanity looks at nature with respectful and friendly eyes. In this task all faiths have an important role to play.

Instead of indiscriminate plundering of nature's resource base, humankind should take to the path of farsighted conservation and judicious exploitation.

Jaina ethics regards abuse or waste of any part of nature as a kind of theft as it deprives life of its inherent autonomy and independence. Jaina scriptures put a lot of emphasis on it :

Take from the earth only what you need;
the Mother Earth will then be able to
serve and support life longer.

After oil, water threatens to emerge as a crisis commodity in the 21st century creating more and more inter-state or inter-country conflicts and irritants. There is a lot of water in oceans and rivers and yet there are grave shortages of drinking water, water for other uses and hydro-electric power. And yet around 75% water of rivers flows down to the sea unused. Waterbased development projects need priority handling in an atmosphere not of confrontation, hostility and confusion, but of cooperation, harmony and clarity.

Our religious and spiritual leaders have brought to the Summit waters of holy rivers. Let this not become a mere tokenism. Let this arouse awareness in the world for taking both preventive and curative measurs to protect our rivers, to regulate them, to conserve their water and use it for the benefit of the mankind.

Worshipping our rivers is part of our religion, but steps are required to maintain water quality and protect rivers from pollusion, to protect the people from flood damages, and to harness river water for hydropower in order to meet growing need for power. Development goals are compitable with spiritual perceptions, as well as with environmental considerations. Pro-development approach alone would eliminate hostility and friction.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Terrorism is becoming more and more dreadful, violent and tortuous. Innocent civilians are its victims. Religious and spiritual leaders need to join in the effort to curb & eliminate terrorism by going to affected areas and population with courage and openness. Bullets will never kill bullets. It is persuasive effort which will bring home the futility of using bullets.

There are encouraging and inspiring examples. Mahatma gandhi walked alone in riot-torn Noakhali area in Bengal to bring to the people message of love and harmony, Jaina Saint Acharya Sushil Kumarji showed the courage to walk into riot effected areas in India carrying the message of tolerance and non-violence. During Iran-Iraq war, he took trips to Moscow and Baghdad. Howsoever difficult, such initiatives need to be multiplied, only then the momentum would gather in favour of non-violence, tranquility and equanimity.

In the ultimate analyses, world's people for peace must come on the centre stage and not leave peace to be attained at only government levels. As Dwight Eisentower once observed -

> *'People in the long run are going to do more to promote peace than Governments. I think that people want peace so much that one of these days the governments had better get out of their way and let them have it.'*

Over 6 billion human beings inhabitating Planer Earth need to wake up to their responsibilities as enlightened beings and recognise what Jaina Scripture Sūtrakrtānga says -

> **'As the Earth is the abode of all living beings so the peace is the abode of all enlightened beings.'**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिह्न, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

1993 से 1999 के मध्य संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री (इन्दौर), प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर), प्रो. भागचन्द्र 'भास्कर' (नागपुर), डॉ. उदयचन्द्र जैन (उदयपुर), आचार्य गोपीलाल 'अमर' (नई दिल्ली), प्रो. राधाचरण गुप्त (झांसी) एवं डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन (इन्दौर) को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

वर्ष 2000 का पुरस्कार **'भगवान ऋषभदेव'** पर लिखित किसी मौलिक प्रकाशित / अप्रकाशित कृति पर दिया जायेगा। कृति में भगवान ऋषभदेव के साहित्य, इतिहास एवं पुरातत्त्व में उपलब्ध सभी सन्दर्भ मूलत: एवं प्रामाणिक रूप में संकलित होने चाहिये। वैदिक साहित्य के उद्धरणों के प्रामाणिक अनुवाद भी ससन्दर्भ दिये जाना अपेक्षित है। वर्ष 2001 का पुरस्कार जैन धर्म/दर्शन की वैज्ञानिक प्रकृति को उद्घाटित करने वाली कृति पर दिया जायेगा। यह कृति समग्र या किसी एक विधा पर केन्द्रित हो सकती है। हिन्दी / अंग्रेजी भाषा में लिखित मौलिक प्रकाशित / अप्रकाशित एकल कृति निर्धारित प्रस्ताव पत्र के साथ अन्तिम तिथि तक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कार्यालय में प्राप्त होना आवश्यक है। प्रकाशित कृति 1995 से पूर्व प्रकाशित नहीं होनी चाहिये। प्रस्ताव पत्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय में उपलब्ध हैं।

वर्ष 2000 हेतु अन्तिम तिथि - 30 जून 2001

वर्ष 2001 हेतु अन्तिम तिथि - 31 दिसम्बर 2001

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म का सन्धान

■ जतनलाल रामपुरिया*

एलिजाबेथ शार्प एक प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखिका हुई हैं। प्राचीन विद्याओं का अध्ययन करने हेतु वे भारत आईं और कई वर्षों तक यहीं रहीं। उन्होंने भारतीय दर्शन, औषधि विज्ञान, योग आदि विषयों पर अनेक शोध - खोज पूर्ण पुस्तकें लिखीं। लुजाक एण्ड कम्पनी, लन्दन द्वारा सन् 1938 में प्रकाशित उनकी एक पुस्तक का नाम है - **The Great Cremation Ground (महाश्मशान)**। इस शीर्षक की कल्पना के पीछे उनका आशय संभवतः 'निर्वाण' या 'मोक्ष' रहा। जो भी हो, मुझे इस अनूठे शीर्षक ने उक्त पुस्तक को पढ़ लेने का निमंत्रण दिया।

इस पुस्तक में विदुषी लेखिका ने जैन धर्म और उपनिषदों का संक्षिप्त मगर अत्यन्त युक्तिपूर्ण तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उपसंहार में उन्होंने जैन धर्म के बारे में जो अपना निष्कर्ष दिया है, उसका एक अंश नीचे उद्धृत है -

The Jaina Philosophy is an almost perfect one and the flaws in it are due rather to the largeness of the subject discussed than to the philosophy itself.

जैन दर्शन अपने आप में लगभग निर्दोष और पूर्ण है। इसमें जो कमियाँ हैं वे वस्तुतः विवेचित विषय के बहुत विस्तृत होने के कारण हैं, न कि इसके दर्शन (तत्वज्ञान) जनित।

भिन्न धर्म की अनुयायिनी, एक पाश्चात्य लेखिका द्वारा एक प्राच्य धर्म का इतना सटीक विश्लेषण आह्लादकारी है। जैन दर्शन सचमुच इतना सूक्ष्म, इतना गहन और चिन्तन के विभिन्न क्षितिजों पर इतना फैला हुआ है कि एक अध्ययनशील और जिज्ञासु व्यक्ति भी इसकी सम्पूर्ण गहराई तक पहुँचते - पहुँचते स्वयं को थका हुआ सा अनुभव करता है। क्यों हुआ ऐसे? इसका विशाल कलेवर क्या अकारण ही है?

इतिहासकार अब एकमत हैं कि जैनधर्म भारत का प्राचीनतम जीवित धर्म है। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह की धुरी पर श्रमण - परम्परा का सूत्रपात किया। भगवान महावीर जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर हुए हैं। उन्होंने अपने पूर्व तीर्थंकरों के चिन्तन - मंथन को एक क्रमबद्ध और व्यवस्थित दर्शन का रूप दिया। अनेकान्त और अनाग्रह की भित्ति पर, सब जीवों के प्रति आत्मवत आचरण और संयममय जीवनशैली का रूप लेकर जैन धर्म का अवतरण हुआ।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र - यह रत्नत्रयी जैन दर्शन का आधार स्तम्भ है। सत्य और असत्य, श्रेय और प्रेम एवं शाश्वत और नश्वर के बीच सही विवेचन करने की दृष्टि और जो सत्य है, श्रेय है, शाश्वत है, इसमें गहन आस्था सम्यक् दर्शन है। इस आस्था के आलोक में अर्जित ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान जिस सत्य को अनावृत और उद्भाषित करते हैं उसके अनुरूप मनसा - वाचा - कर्मणा आचरण सम्यक् चारित्र है।

सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। ये दोनों, धर्म के सही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप को जानने के लिये पूर्व शर्त के रूप में जैन दर्शन के महत्वपूर्ण अंग हैं। धर्म क्या है, बिना सम्यक् ज्ञान के यह समझा नहीं जा सकता, ऐसा जैन दर्शन का आग्रह है और यही आग्रह जैन धर्म को विज्ञान के धरातल पर ले जाता है। यह अतिरंजन नहीं कि विज्ञान (Science) शब्द जिस अर्थ में आज प्रयुक्त है, वही आशय अगर वह भगवान महावीर के समय व्यक्त करता होता तो उनके दर्शन को संभवत: धर्म की नहीं, विज्ञान की संज्ञा मिलती। जैन धर्म स्वयं अपने आपमें एक पूर्ण विज्ञान है, इस बात को कहने से पूर्व, यहाँ विज्ञान की परिभाषा पर एक दृष्टि आवश्यक है -

Science - *"Systematic knowledge of the Physical or material world gained through observation and experimentation".*

अर्थात् सूक्ष्म निरीक्षण और परीक्षण के द्वारा अर्जित भौतिक पदार्थों का संस्थित (व्यवस्थित) ज्ञान ही विज्ञान है। मगर यह सृष्टि तो केवल भौतिक वस्तुओं तक सीमित नहीं। द्रव्य जगत् (Physical or Material World) से भी अधिक महत्वपूर्ण अलग एक भाव जगत भी है। विज्ञान, जैसा कि इसकी परिभाषा कहती है, केवल द्रव्य जगत पर केन्द्रित है, भाव जगत को इसका विषय ही नहीं। यह सचमुच आश्चर्य की बात है। दूसरी ओर, जैन दर्शन केवल द्रव्य जगत का नहीं, केवल भाव जगत का भी नहीं, बल्कि दोनों के ही सूक्ष्मतम रूपों से साक्षात्कार करने का उपक्रम है। आध्यात्म का विषय संकुचित अर्थ में केवल भाव जगत बनता है मगर जैन दर्शन पदार्थ जगत की गवेषणा के माध्यम से भाव जगत के रहस्यों को अनावृत करता है और यही, विज्ञान की तरह, उसके वृहत् आकार का कारण है।

जीव (Soul), अजीव (Matter), पुण्य (Virtue), पाप (Sin), आस्रव (Influx of Karma), संवर (Arrest of the influx of Karma), निर्जरा (Liquidation of Karma), बंध (Bondage) ओर मोक्ष (Liberation) - ये नौ पदार्थ जैन आध्यात्म विद्या के मुख्य आधार हैं। इनमें से प्रथम दो दृश्यमान स्थूल जगत से सम्बन्धित हैं। पदार्थ की शाश्वतता (Indestructibility of the matter), क्रिया और प्रतिक्रिया (Action and Reaction). कारण और परिणाम (Cause and Effect) एवं सापेक्षवाद और अन्तनिर्भरता (Law of relativity) जैसे मूलभूत वैज्ञानिक सिद्धान्त जैन दर्शन की नींव में हैं और इस विश्लेषण के माध्यम हैं। केवल श्रद्धा प्रेरित और आस्था पर आधारित मान्यतायें जैन दर्शन में बहुत कम हैं।

इस लेख में विस्तार की जगह नहीं। फिर भी जैन दर्शन में जीव और अजीव, जो भौतिक पदार्थ हैं और जो विज्ञान का भी विषय है, के वर्गीकरण पर एक दृष्टि समीचीन होगी। (देखें सारणी)

जैन दर्शन विज्ञान है, इसलिये ही उसमें जीव के साथ अजीव का भी इतना विशद् विवेचन है। उसके दीर्घकाय होने का भी यही रहस्य है। विज्ञान अपनी खोज की समाप्ति तक चलता रहता है। भौतिक, रसायन और प्राणि शास्त्र (Physics, Chemistry and Biology) और इनकी शाखाओं और उप शाखाओं की आकाशगंगा में आदमी खो जाता है ; जैन दर्शन की थाह भी उसी तरह सबके लिये सुगम नहीं बनी। विज्ञान का अपना कलेवर होता है। जैन धर्म का विस्तार भी उसका अपना नहीं, विज्ञान का है। भगवान महावीर ने तो उसे केवल खोजा था, गढ़ा नहीं।

एलिजाबेथ शार्प ने जिस flaw की ओर इंगित किया है, वस्तुत: वह जैन दर्शन के सर्वगम्य और सर्वग्राह्य न बन पाने के कारणों की मीमांसा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

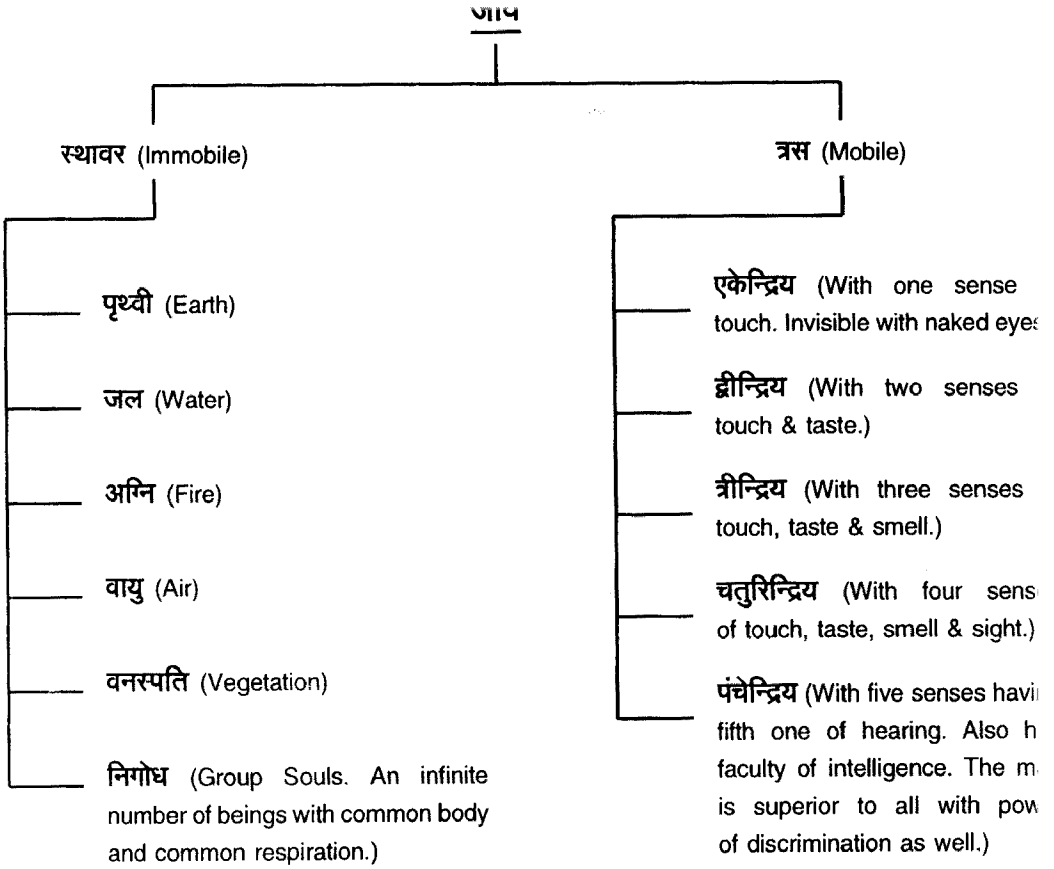

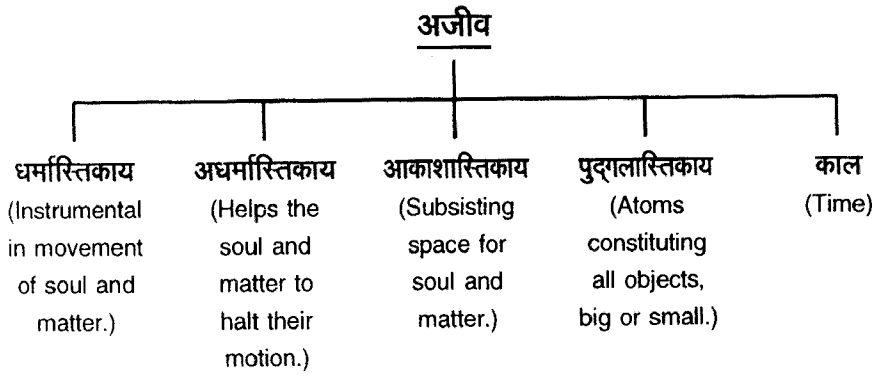

उक्त पाँचों द्रव्य शाश्वत हैं। ये कभी नष्ट नहीं होते हैं।

सन्दर्भ -

1. The Random House Dictionary of the English language, Seconf Edition, Unabridged.

* 15, नूरमहल लोहिया लेन, कलकत्ता - 700 007

प्राप्त - **6.9.2000**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानोदय इतिहास पुरस्कार

श्रीमती शांतिदेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 में की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलतः यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत पुरस्कार राशि में वृद्धि करते हुए वर्ष 2000 से प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र/पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान् को रुपये 11000/- की नगद राशि, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

वर्ष 1998 का पुरस्कार रामकथा संग्रहालय, फैजाबाद के पूर्व निदेशक **डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी** को उनकी कृति **'जैन धर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य'** पर 29.3.2000 को समर्पित किया गया।

वर्ष 1999 का पुरस्कार प्रो. हम्पा नागराजैय्या **(Prof. Hampa Nagarajaiyah)** को उनकी कृति **'A History of the Rastrakutas of Malkhed and Jainism** पर प्रदान किया गया।

वर्ष 2000 हेतु वांछित संख्या एवं स्तर के प्रस्ताव प्राप्त न होने के कारण इस वर्ष का पुरस्कार रद्द कर दिया गया।

वर्ष 2001 से चयन की प्रक्रिया में परिवर्तन किया जा रहा है। अब कोई भी व्यक्ति पुरस्कार हेतु किसी लेख या पुस्तक के लेखक के नाम का प्रस्ताव सामग्री सहित प्रेषित कर सकता है। चयनित कृति के लेखक को अब रु. 11000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जायेगी।

चयनित कृति के प्रस्तावक को भी रु. 1000/- की राशि से सम्मानित किया जायेगा। वर्ष 2001 के पुरस्कार हेतु प्रस्ताव सादे कागज पर एवं सम्बद्ध कृति/आलेख के लेखक तथा प्रस्तावक के सम्पर्क के पते, फोन नं. सहित 31 दिसम्बर 2001 तक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर-452001 के पते पर प्राप्त हो जाना चाहिये।

जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान में रुचि रखने वाले सभी विद्वानों/समाजसेवियों से आग्रह है कि वे विगत 5 वर्षों में प्रकाश में आये जैन इतिहास/पुरातत्त्व विषयक मौलिक शोध कार्यों के संकलन, मूल्यांकन एवं सम्मानित करने में हमें अपना सहयोग प्रदान करें।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आशीर्वाद, संगीत और प्रार्थना का प्रभाव

■ सुलतानसिंह जैन*

आशीर्वाद प्रत्यक्ष में दिखाई देने वाली कोई वस्तु तो नहीं है परन्तु इसका अर्थ यह कदाचित नहीं है कि न दिखाई देने वाली वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं है, अस्तित्व है। इस क्रिया में आशीर्वाद देने वाला और लेने वाला दो व्यक्ति होते हैं, दोनों के मध्य गुरु शिष्य के भाव होते हैं, माँ - बाप बेटे के भाव होते हैं। आशीर्वाद देने वाले की आकांक्षा होती है कि आशीर्वाद पाने वाले की हर शुभ इच्छा पूरी हो, वह शुभाशीष कहते हुए उसके (शिष्य) सिर पर हाथ फेरते हुए दर्शाता है कि मेरे हृदय की अन्तरंग भावनायें तुम्हें प्राप्त हों। सिर आत्मा का कार्यस्थल है अत: शिष्य सिर झुकाते हुए नीचे को झुकता है। गुरु उसे अपने हृदय के पास रोकने का प्रयत्न करता है मानों कह रहा हो कि सुन मेरे हृदय की धड़कन जो आशीर्वाद दिये जाने की खुशी में बढ़ गई है। शिष्य गुरु के पैरों को छूने का प्रयत्न करता है या छूता है। ऐसा करने में शिष्य का हृदय झुकता है। खड़े होने की स्थिति में मस्तिष्क को जो रक्त प्रवाह मिल रहा था उसकी मात्रा बढ़ जाती है तथा उसके रीढ़ की हड्डी जिसमें संवेदनशील तन्तु होते हैं, उस पर गुरु की दृष्टि टिक जाती है। दृष्टि के रुकने में एक मौन शक्ति और जादू है। इस पूरी प्रक्रिया में हालांकि कुछ ही सेकण्ड लगते हैं परन्तु इसके प्रभाव के पश्चात् गुरु और शिष्य दोनों के चेहरों पर मुस्कान और कृतज्ञता के भाव उभर आते हैं। आशीष की क्रिया में जीवन का मधुर संगीत छिपा हुआ है।

संगीत का जादू मुग्ध ही नहीं करता, रोगमुक्त भी करता है। मनपसन्द संगीत होने पर ही संगीत ऐसा प्रभाव डालता है मानों संग में कोई मीत ही हो, संगीत का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क पर पड़ता है जो मानव के रक्त संचार व्यवस्था और संवेदनशील तन्तुओं को प्रभावित करता है। मनुष्य अपने दुख को भी भूलकर संगीत की लय के साथ झूम उठता है। उसकी उंगलियाँ थिरकने लगती हैं। उसके गले में धीमी ध्वनि लिये हुए एक लय फूट पड़ती है। ये ही वे क्षण और पल होते हैं जब उनकी निराशायें धराशाही हो जाती हैं, उनमें धनात्मक विचार पनप जाते हैं जो प्रसन्नता लिये हुए होते हैं। संगीत का जादू पशु पक्षियों पर भी पड़ता है।

प्रार्थना से स्वास्थ्य लाभ -

सामान्यतया मनुष्य अपने लिये ही ईश्वर से प्रार्थना करता है कि उसकी इच्छाओं की पूर्ति हो। परन्तु यदि उसका कोई प्रिय या सगा सम्बन्धी किसी दुख या कष्ट या रोग में फंस गया हो तब भी मनुष्य (उसका संरक्षक) ईश्वर से प्रार्थना करता है कि उसके प्रियजन को स्वास्थ्य लाभ दे। इस प्रार्थना का उसके प्रियजन को पता हो भी सकता है और नहीं भी। प्रार्थना अपने से छोटों के लिये या बड़ों के लिये एक ही भाव से की जाती है। प्रार्थना करने की क्रिया में मनुष्य के भाव ईश्वर से आशीर्वाद, शुभाशीष या वरदान लेने की मुद्रा में होते हैं कि ईश्वर अवश्य ही उसकी इच्छा को पूरा करेंगे।

प्रार्थना करने से पूर्व या पश्चात् वह मनुष्य या वे मनुष्य रोगी के पास जाते हैं, कहते हैं ईश्वर का नाम लो, सब ठीक करेंगे। यह भी तथ्य है कि डाक्टर अपने मरीज को दवा तो देता ही है, साथ में वह भी ईश्वर से दुआ मांगता है कि उसका मरीज ठीक हो। ये सब के विचारों की तरंगें मौन में ही रोगी के प्रति अपनी क्रियायें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरम्भ कर देती हैं। विचारों की तरंगें ही हमारे लिये मित्र बना देती है और शत्रु भी। विचारों की तरंगों का प्रभाव जानने के लिये डाक्टरों की एक टीम ने कुछ मनुष्यों का चेक अप किया। एक व्यक्ति जो हट्टा-कट्टा था, उसके डाक्टर मित्र ने बोला आज आपको क्या हो गया है? बड़े सुस्त से लगते हो। वह व्यक्ति बोला - मैं तो ठीक हूँ, फिर भी घर जाकर अपने चेहरे को शीशे में देखने लगा। उसे कुछ शक हुआ, वह दूसरे से, फिर तीसरे, चौथे डाक्टरों के पास गया। सभी ने पहले डाक्टर की पुष्टि करते हुए और अधिक रोग के लक्षण बता दिये और शाम होते होते वह हट्टा-कट्टा व्यक्ति वास्तव में बीमार पड़ गया और डाक्टरी इलाज चालू हो गया। उसके मित्र डाक्टर ने उसे केवल एक शीशी में साधारण पानी भरकर उसकी कुछ खुराकें उसे देते हुए कहा - यह एक बहुत बड़ी रामबाण औषध है, जल्दी ही ठीक हो जाओगे। इस साधारण पानी की उक्त दवा शुरु हो गई। दूसरे दिन डाक्टर ने कहा अब दवा ने पूरा प्रभाव दिखाया है, बुखार भी नहीं है, लगभग ठीक हो गये हो। डाक्टर के जाने के पश्चात् उस व्यक्ति ने फिर से अपना चेहरा शीशे में देखा। उसे लगा मैं तो स्वस्थ हो गया हूँ। अब दवा पीने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस बात को जानने के लिये वह अपने मित्र डाक्टर के पास गया। वह तो मिला नहीं, वह व्यक्ति दूसरे, तीसरे, चौथे डाक्टर के पास उनकी राय लेने पहुँचा। सभी ने कहा आश्चर्य, आप तो बिलकुल ठीक हो गये हो। वह बड़े उत्साह से अपने घर आया, फिर से शीशे में अपना चेहरा देखा और एक हल्की सी मुस्कान उसके चेहरे पर बिखर गई। उसे विचार उठा कि अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि विचारों का ही सब करिश्मा है।

प्राप्त - 6.12.99

* इंजीनियर
767-ए, पश्चिमी अम्बर तालाब, शांतिनगर,
रूढ़की - 247 667 (उ.प्र.)

75 वर्षीय श्री त्रिलोकचन्द कोठारी (जैन) को पी-एच.डी.

औद्योगिक जगत में नाम कमाने के बाद कोटा के प्रसिद्ध समाजसेवी 75 वर्षीय श्री त्रिलोकचन्द कोठारी (जैन) ने शिक्षा व साहित्य के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल की है। उनके द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध **'दिगम्बर जैन समाज - वैचारिक विकास एवं सामाजिक दर्शन : बीसवीं सदी का समीक्षात्मक अध्ययन'** विषय पर कोटा खुला विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की गई है। कोठारी ने यह शोध कार्य डॉ. ब्रजकिशोर शर्मा, सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष-इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा के निर्देशन एवं मार्गदर्शन में पूरा किया है।

अपने शोध प्रबन्ध में उन्होंने जैन धर्म की उत्पत्ति व विकास का बीसवीं सदी के अन्त तक का विश्लेषण किया है। यह शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभाजित है तथा इसे तैयार करने में 63 पुराण एवं ग्रन्थ, अंग्रेजी में प्रकाशित 31 पुस्तकों एवं अनेको पत्र-पत्रिकाओं से सन्दर्भ लिया गया है।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक बधाई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

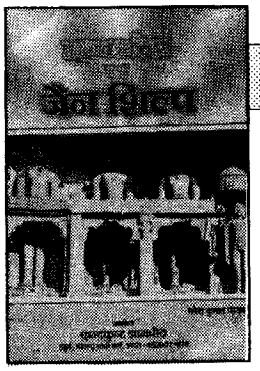

मध्यप्रदेश का जैन शिल्प

पुस्तक : **मध्यप्रदेश का जैन शिल्प**
लेखक : **नरेशकुमार पाठक, संग्रहाध्यक्ष - केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर**
प्रकाशक : **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452001**
मूल्य : **रु. 300/-** **पृष्ठ : XVI + 336 + 20 Plates**
समीक्षक : **सूरजमल बोबरा, सदस्य - अर्हत् वचन सम्पादक मंडल, 9/2 स्नेहलतागंज, इन्दौर**

किसी शोध संस्थान के द्वारा कोई पुस्तक जब प्रकाशित की जाती है तो पाठक की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जाती है। अधिकतम पाठक उसे विषय का अधिकृत शोध ग्रंथ मान लेता है।

निश्चयपूर्वक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन एक अभिनंदनीय प्रयास है। लेखक श्री नरेशकुमार पाठक अपनी पुरातत्त्वीय खोज यात्रा में विस्मृत होती हुई जैन परम्परा व इतिहास को सम्हालने - समझने के महत्वपूर्ण कार्य को आकार दे गये हैं। जैन परम्परा के शिल्पों और ग्रन्थों का विनाश विदेशी आक्रांताओं, भिन्न विचारों व दार्शनिक पीठिकाओं के समर्थकों व प्राकृतिक विपदाओं ने बहुतायत में किया है, ऐसे में उस परम्परा का एक - एक संदर्भ सूत्र अनमोल मोती है और उसे सहेज कर रखा जाना चाहिये। ऐसे बहुत से प्रमाण हैं जिसमें जैन विद्या के केन्द्रों को दूसरे विचार के लोगों ने बलात् हथिया लिया और शिल्पों को चिह्न मिटाकर या तो अपना आराध्य बना लिया या उन्हें जमींदोज कर दिया गया। अतः एक एक शिल्प को पहचानना और उनका अधिकृत व्यक्ति द्वारा रिकार्ड तैयार किया जाना अत्यावश्यक है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, श्री नरेशकुमार पाठक एवं प्रकाशन के आर्थिक सहयोगी त्रय श्री सिद्धकूट चैत्यालय टेम्पल ट्रस्ट, सोनीजी की नसिया - अजमेर, श्री शंभुकुमारजी कासलीवाल - मुम्बई व श्री संजय जैन - इन्दौर का जैन संघ सदैव आभारी रहेगा कि मध्यप्रदेश के विशाल अंचल में बिखरे जैन शिल्पों से उन्होंने हमें रूबरू करा दिया है। वनांचलों, नदी - किनारों, भूले बिसरे प्राचीन स्थलों, तीर्थों, संग्रहालयों में दबे - पड़े शिल्प रत्नों को एक साथ अपने टेबल पर देखना अत्यंत रोचक व अद्भुत अनुभव है। जैन संघ को यह सदैव ध्यान रखना होगा कि जैन चिंतन के निश्चय व व्यवहार के चरित्र व ज्ञान पक्ष को सम्हालने के साथ अपनी परम्परा व इतिहास को भी उसे अनावृत्त करना होगा, उसे सहेजना होगा। प्राचीन काल में जो विनाश होना था, वह हो चुका किन्तु अब पुनः उसकी पुनरावृत्ति न हो। अन्यथा तीर्थंकरों की मूर्तियाँ पुनः खंडित कर दी जायेंगी, कई मूर्तियाँ मस्जिदों व मन्दिरों की दीवालों व सीढ़ियों में चुन दी जायेंगी, पद्मावती की मूर्ति काली देवी में बदल जायेंगी या किसी भूकम्पन बाढ़ में धरती में समा जायेंगी। सूचना प्रौद्योगिकी के इस विकसित युग में यह विचार करना आवश्यक है कि क्या हम अपने संदर्भों को किसी प्रकार सूचीकृत कर सकते हैं। पुस्तक प्रकाशन, चित्र प्रकाशन तो होना ही चाहिये, साथ ही दृश्य व श्रव्य रूप से कैसे यह सन्दर्भ जनसुलभ हों, यह मार्ग भी प्रशस्त होना चाहिये।

अच्छे प्रयासों का अभिनन्दन होना ही चाहिये किन्तु तीन बातों की ओर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का ध्यान दिलाना चाहूँगा -

1. पुस्तक में चित्रों का प्रकाशन अच्छा नहीं हुआ है। कई शिल्प मूल रूप में जितने प्रभावशाली हैं, चित्र में वे अपना प्रभाव पैदा नहीं कर पा रहे हैं। मूक पत्थरों में शिल्पी ऐसी प्राण प्रतिष्ठा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर देते हैं जो खंड-खंड होकर भी अपने निर्माण काल की कहानी दोहराते रहते हैं। कोई विक्षिप्त समूह इस सोच से कि मूर्ति खंडित होकर कुछ नहीं कहेगी, मूर्ति भले ही खण्डित कर दे पर पुस्तक में प्रकाशित कई खंडित शिल्प हमें 4थी शताब्दी की यात्रा करा देते हैं। भारत के इतिहास का मध्य युग तो पूर्णतः साकार हो गया है। मध्य युग में जैन संघ कितना शक्तिशाली था इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। चित्रों एवं मुद्रक के चयन में सावधानी जरूरी है।

2. चित्रों के साथ उनका प्लेट क्रमांक व उनका परिचय भी ठीक से जाना चाहिये। शोधार्थी को इससे बहुत सहायता मिलती है। मुखपृष्ठ के चित्र के नीचे भी परिचय नहीं है।
3. ऐसे प्रकाशनों के साथ चिंतन व प्राचीन इतिहास को अधिक छान-बीन के साथ प्रकाशित किया जाना चाहिये। पुस्तक में कई जगह उनके संदर्भ सम्पूर्ण सूचना नहीं दे रहे हैं। अर्द्धसूचना कई बार गलत निर्णय पर पहुँचा देती है।

तीनों ही सुझाव विवाद को जन्म देने के लिये नहीं हैं। शोध केन्द्र का गुरुतर दायित्व भविष्य में अधिक प्रभावशाली ढंग से पूर्ण हो, इस सकारात्मक दृष्टि से ये सुझाव हैं।

मध्यप्रदेश का बहुत सा भाग सिंधु घाटी सभ्यता के साथ सह अस्तित्व में था, यह वह सत्य है जो वर्तमान में हो रही नवीनतम खुदाईयों से अनावृत्त हो रहा है। स्वर्गीय डॉ. वाकणकरजी भी इस विचार से किसी हद तक सहमत थे जो उन्होंने व्यक्तिगत चर्चा के बीच अभिव्यक्त भी किये थे। सभी जैन शिल्पों को हम सहेजें, उनका अध्ययन करें तो हो सकता है कि कोई कड़ी, कोई खिड़की हमें ऐसी मिल जाये जो हमें मुनिसुव्रतनाथ, शांतिनाथ, आदिनाथ के दर्शन उसी ऐतिहासिक रूप में करा दे जिस रूप में राम ने लंका में व भरत ने अष्टापद पर किये थे। प्रस्तुत पुस्तक इस यात्रा में महत्वपूर्ण मील का पत्थर सिद्ध हो सकती है।

डॉ. हरिहरजी द्विवेदी का प्राक्कथन में प्रकाशित यह वाक्य दोहराना चाहता हूँ - **'जैन बन्धु केवल धार्मिक भावना से प्रेरित होकर दर्शन हेतु मन्दिर जाते हैं। जैन शिल्प कला के अध्ययन की ओर उनकी प्रवृत्ति उदासीन ही दृष्टिगोचर होती है।'** इस संकेत को जैन संघ द्वारा आत्मसात् किया जाना चाहिये। खोजपरक प्रकाशन के लिये लेखक, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ व आर्थिक सहयोगियों को हार्दिक बधाई।

जिन ऋषियों ने वेद मंत्रों की रचना की, उन्होंने उसी समय वैदिक भाषा की भी रचना न कर डाली थी। वह भाषा एक सुदीर्घ विकास-परम्परा का परिणाम है।इस सम्बन्ध में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का निम्नलिखित तर्क विचारणीय है -

वेदों की भाषा का प्रकृत रूप क्या था, यह जानने के लिये निराधार कल्पना की जरूरत नहीं। वेदों की जो भाषा है उससे मिलती जुलती ही वह 'प्रकृत-भाषा' होगी, जिसे हम 'भारतीय भूल भाषा' कह सकते हैं। उस 'मूल भाषा' को 'पहली प्राकृत भाषा' समझिये। 'प्राकृत भाषा' का मतलब है 'जनभाषा'। जब वेदों की रचना हुई, उससे पहले ही भाषा का वैसा पूर्ण विकास हो चुका होगा। तभी तो वेद जैसे साहित्य को वह वहन कर सकी। भाषा के इस विकास में कितना समय लगा होगा। फिर, वेद जैसा उत्कृष्ट साहित्य चाहिये तो देखिये - क्या उस मूल भाषा या 'पहली प्राकृत' की पहली रचना ही वेद है? संभव नहीं। इससे पहिले छोटा-मोटा और हल्का-भारी न जाने कितना साहित्य बना होगा, तब वेदों का नम्बर आया होगा। सो वेदों की रचना के समय वह मूल भाषा पूरी तरह विकसित हो चुकी होगी और देश-भेद से या प्रदेश-भेद से उसके रूप भेद भी हो गये होंगे। उन प्रादेशिक भेदों में से जो कुछ साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुका होगा, उसी में वेदों की रचना हुई होगी, परन्तु अन्य प्रादेशिक रूपों के भी शब्द प्रयोग ग्रहीत हुए होंगे।'

— **आचार्य किशोरीदास बाजपेयी,** भारतीय भाषा विज्ञान, पृ. 113-114

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 79 - 82

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भट्टारक यशकीर्ति दिग. जैन सरस्वती भवन, ऋषभदेव

का सर्वेक्षण व शास्त्रों का मिलान

■ डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज'*

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के आर्थिक सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में डॉ. अनुपम जैन के निर्देशन में चलाई गतिमान जैन साहित्य सूचीकरण परियोजना के अन्तर्गत ऋषभदेव (केशरियाजी) के शास्त्र भण्डारों का सर्वेक्षण व शास्त्रों का मिलान किया तथा उसे व्यवस्थित कर प्रकाशित किया गया, जिसका विमोचन जैन विद्या संगोष्ठी के अवसर पर 4 मार्च 2001 को सम्पन्न हुआ।

सन् 1942 में 'श्री भट्टारक यशकीर्ति दिगम्बर जैन धर्मार्थ ट्रस्ट के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची' नाम से एक पुस्तिका प्रकाशित हुई थी, उसमें 890 हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण प्रकाशित हुए थे। हमने उसी सूची के आधार पर पंडित चन्दनलाल जैन शास्त्री, ऋषभदेव से पत्र - सम्पर्क किया। उन्होंने 1081 शास्त्रों की वर्तमान सूची हमें प्रेषित की। किन्तु वर्तमान सूची में मात्र ग्रन्थों के नाम व ग्रंथ संख्या थी, अन्य विवरण नहीं थे। ऐसे में हमनें पूर्व प्रकाशित सूची से विवरण तथा प्राप्त वर्तमान सूची से ग्रथांक लेकर सूची कम्प्यूटर पर फीड करवाई और प्रथम प्रिन्ट आऊट पं. चन्दनलाल शास्त्री को इस प्रत्याशा के साथ भिजवाया कि वे शास्त्रों के मिलान कर भेजें। किन्तु इस कार्य में उन्होंने अपनी शारीरिक असमर्थता तथा अन्य किसी जानकार की अनुपलब्धता व्यक्त की। इस भण्डार के अवलोकन और मिलान के लिये 21 फरवरी 2001 को ऋषभदेव पहुँचा।

ऋषभदेव (केशरियाजी) अतिशयकारी मंदिर से लगभग 100 मीटर पूर्व की ओर पूर्वाभिमुख एक तिमंजिला छोटा सा भवन है। इस पर बोर्ड लगा है **भट्टारक यशकीर्ति भवन चैत्यालय एवं सरस्वती भवन।** इस भवन में भूमितल में भक्तों, यात्रियों के रहने की व्यवस्था थी, प्रथम मंजिल पर भट्टारकजी की गादी, उनके उपदेश और रहने का स्थान है, द्वितीय मंजिल पर चैत्यालय तथा ग्रन्थ भंडार है और ऊपरी मंजिल पर एक कमरा साधना - स्थल है।

पिछले 60 - 65 वर्ष से एक ही व्यक्ति इस भण्डार की व्यवस्था देख रहे हैं। इस कारण हमें अधिक असुविधा नहीं हुई। हमने देखा कि शास्त्रों को कुछ और व्यवस्थित किया गया है। पहले वेष्टन में रखा गया और उन पर स्वतंत्र ग्रंथांक दिये गये। एक अन्य बदलाव में ग्रन्थों को काफी अंशों में विषयवार व्यवस्थित कर अनुक्रम से उनमें ग्रंथांक अंकित किये गये और उसी क्रम में उन्हें व्यवस्थित किया गया है। इस कारण पूर्व प्रकाशित सूची पूर्णतया रद्द हो गई। यहाँ के सरस्वती भवन में 1666 मुद्रित पुस्तकें तथा 1076 हस्तलिखित शास्त्र हैं।

शास्त्र संख्या 1 से 750 तक मिलाने व अवलोकन के क्रम में मैं मन ही मन

* शोधाधिकारी – पांडुलिपि सूचीकरण परियोजना, C/o. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर – 452 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत प्रसन्न व आश्चर्यान्वित था कि इस भण्डार के पास पर्याप्त साधन और उपकरण न होते हुए भी यह भण्डार व्यवस्थित, सुरक्षित और अच्छी स्थिति में है। भित्तीय अलमारियों तथा काष्ठ की अलमारियों में रखे होने के बावजूद न तो ग्रन्थों में सीलन, न दीमक और न सिल्वरफिश आदि कीट पाये गये। किन्तु जब अलमारी नं. 9 के शास्त्रों को बाहर निकालकर खोला तो सारी प्रसन्नता निराशा में बदल गई क्योंकि शास्त्रों में लगे गत्ते बेतरतीब ऐंठे हुए थे। शास्त्रों के पत्र पूरी तरह चिपक रहे थे। कर्मचारी गैवीलाल से पूछने पर उन्होंने बताया कि प्रतिवर्ष ग्रीष्म काल में शास्त्र धूप में रखे जाने के क्रम में जून 2000 में भी धूप में रखे गये। एक दिन कर्मचारी अलमारी नं. 9 के सभी शास्त्र धूप में रखकर दो फर्लांग दूरी पर स्थित गुरुकुल में आ गये। इस बीच अचानक बारिस हुई। कर्मचारियों ने सरस्वती भवन में जाकर देखा तो शास्त्र वेष्टन सहित पूरी तरह भीग गये थे। सभी शास्त्र भण्डार में लाये और उन्हें गीले बंधे हुए में ही 3-4 दिन छाया में सुखाया गया और उसी तरह गड्ड-मड्ड अलमारी में रख दिया।

कृत कार्य :

- हमने क्रम से एक-एक अलमारी के शास्त्र निकालकर पुरानी सूची से विवरण और नई सूची से शास्त्र मिलान करते हुए प्रत्येक शास्त्र की विवरण के साथ वास्तविक संख्या अंकित की।
- जिस शास्त्र के सम्वत् या रचयिता के नाम में सन्देह हुआ उसका विद्वान् व्यवस्थापक शास्त्रीजी के साथ मिलकर वाचन और सन्देह निवारण किया।
- भित्तीय अलमारी संख्या 9 में ऐसे शास्त्र थे जो भींग गये थे। भींगने से उनके वेष्टन के ऊपर लगाये गये नाम, संख्या आदि विवरण धुल जाने से पूर्णतया मिट गये थे तथा सुखाने के बाद जिस क्रम में रखे हुए थे उन्हें बाहर लाकर व्यवस्थित किया। उनका नाम देखकर रजिस्टर में यत्र-तत्र से उनके ग्रंथांक देखकर अंकित किये। शास्त्रों में भी स्लिपें लगाई व संख्यादि अंकित की।
- मिलान में हमें शास्त्र संख्या 72, 364, 508, 514, 800, 890 नहीं मिले।

वर्तमान व्यवस्था :

शास्त्रों की लगातार देख-रेख होती रही इसलिये शास्त्रों की स्थिति और व्यवस्था ठीक रही। वर्तमान में सभी 1076 शास्त्र 10 अलमारियों में संयोजित हैं। इनमें 8 अलमारियाँ दीवारों में ही हैं तथा 2 काष्ट की हैं। इन्हीं में शास्त्रों को प्रकाशित पुस्तकों की भांति खड़ा करके रखा गया है। एक अच्छी बात यह है कि शास्त्र भण्डार किसी के लिये भी खुला नहीं छोड़ दिया जाता है, चाहे सामान्य अध्येता, विद्वान् या साधुगण ही क्यों न हों।

प्रत्येक वेष्टन के साथ 9x7 से.मी. का एक कार्ड ऊपर बंधा हुआ है जिसमें शास्त्र का नाम, शास्त्र संख्या और पत्र संख्या दी हुई है। प्रत्येक वेष्टन के साथ 6.3x4 से.मी. का एक छोटा टैग (स्लिप) धागे से बांधकर लटकाया हुआ है। इस टैग-स्लिप पर ग्रन्थ का नाम और ग्रन्थ संख्या अंकित है। यह कार्ड व्यवस्था अनुकरणीय है। प्रत्येक अलमारी पर स्लिप लगी है, उसमें किस क्रमांक से किस क्रमांक तक शास्त्र संयोजित हैं, यह लिखा हुआ है।

भण्डार को क्षति :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिवर्ष शास्त्र सुखाने के क्रम में जून 2000 में भी शास्त्र सुखाये गये। उस समय एक अलमारी के शास्त्र संख्या 751 से 955 तक 204 ग्रन्थ पूर्णतया भींग गये। शास्त्र मिलान के क्रम में हमने जब ये शास्त्र देखे तो भींगने के कारण पत्र आपस में चिपके हुए थे। इन्हें अलग-अलग करने पर पत्र फट रहे हैं और स्याही एक दूसरे में उतर गई है। कई शास्त्रों के पन्नों की स्याही धुल जाने से अवाच्य हो गये हैं। इस भण्डार की यह सबसे बड़ी क्षति है। भण्डार के व्यवस्थापक शास्त्रीजी को शास्त्र भींगने की जानकारी तो थी किन्तु भींगने से शास्त्र चिपक गये हैं, यह जानकारी उन्हें तब हुई जब हमने शास्त्र खोले।

हमारे सुझाव :

इस भण्डार का सर्वेक्षण व मिलान करने पर इसमें सुधार के लिये हमारे निम्नलिखित सुझाव हैं -

1. पानी में भींग जाने के कारण जिन शास्त्रों के पन्ने आपस में चिपक गये हैं, उन्हें एक अच्छे ट्रीटमेंट की आवश्यकता है। हमारा सुझाव है कि यदि इन शास्त्रों को वाष्पीय प्रक्रिया द्वारा पुनः नम (हल्का गीला) करके पत्र अलग-अलग किये जायें तथा उन्हें छाया में सुखाया जाये तो काफी कुछ उपयोगी हो सकते हैं।
2. भण्डार की व्यवस्था पिछले 60-62 वर्ष से श्री पं. चन्दनलाल जैन शास्त्री देखते आये हैं, अब वे शारीरिक रूप से अधिक सक्षम नहीं हैं तथा सीढ़ियाँ चढ़कर भण्डार की नियमित देख-रेख नहीं कर पाते हैं। उनके निर्देशन में एक सक्षम और जानकार व्यक्ति रहे जो शास्त्रीजी की तरह भण्डार की नियमित देख-रेख कर सके।
3. अधिकांश हस्तलिखित शास्त्र दीवालों की अलमारियों में दीवार से सटाकर रखे गये हैं। इन्हें अधिक समय तक नहीं देखे जाने पर कभी दीमक आदि कीट लग सकते हैं। इनके संरक्षण की उच्च मानक व्यवस्था तो वहाँ संभव प्रतीत नहीं होती, तो भी शास्त्रों को लोहे की शीशा लगी अलमारियों में रखा जाना चाहिये।
4. शास्त्रों को खड़ा टिका कर पंक्तिबद्ध प्रकाशित पुस्तकों की तरह संयोजित किया गया है इसमें शास्त्रों के पत्रों के किनारे मुड़ते हैं, इन्हें सीधा उपरिम-उपरिम क्रम में रखना चाहिये।

सचित्र ग्रन्थ :

इस भण्डार में लगभग एक दर्जन ग्रंथ सचित्र हैं। उनमें श्रुतस्कंध नक्शा - 297, तीर्थंकर चित्रावली - 329, जिनसुप्रभात स्तोत्र - 606, नवकारकल्प - 727, भक्तामर यंत्र-मंत्र - 728, शकुन - 772, त्रिलोक वर्णन - 967 और चौसठ योगिनी - 1071 प्रमुख हैं। तीर्थंकर चित्रावली में चौबीस तीर्थंकरों के तथा अन्य चित्र हैं, आगमानुसार जिन तीर्थंकरों का वर्ण स्वर्ण समान है उनके चित्र स्वर्ण से चित्रित हैं। जिनसुप्रभात स्तोत्र में पत्र 7 हैं, यह संवत् 1525 का है। इसमें 5 रंगों - लाल, काला, नीला, फिरोजी, सुनहरी का प्रयोग किया गया है। पत्र की पृष्ठ भूमि में लाल रंग है, प्रत्येक पत्र में 7 पंक्तियाँ हैं, एक पंक्ति काली स्याही से, दूसरी पंक्ति स्वर्ण से, इसी क्रम में लिखा गया है। 2 पत्र पूर्ण स्वर्ण मसि में लिखे हैं। पत्र के बीच में तथा बार्डर पर चित्र हैं। प्रशस्ति में **संवत् 1525** तथा **'श्री मूलसंघे श्री विद्यानंदि तद्दीक्षित शिष्या ..... लिखाप्यदत्त'** वाच्य है। ग्रन्थ जीर्ण होने से उसका लेमिनेशन करवा लिया गया है, किन्तु पाण्डुलिपि की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुवाच्यता के स्थायित्व के लिये लेमिनेशन घातक है।

प्राचीनतम और महत्वपूर्ण ग्रन्थ :

यहाँ ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं जो लिपि एवं कागज का अवलोकन करने से अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होते हैं, किन्तु उनमें संवत् निर्दिष्ट नहीं है। संवत्-युक्त सर्वप्राचीन ग्रन्थ **सामायियारी** भाषा प्राकृत, संवत् 1363, ग्रन्थ संख्या 871 है। इस भण्डार में षट्पाहुड की एक महत्वपूर्ण पाण्डुलिपि है जिसमें चिन्तामणि अपरनाम देवीसिंह कृत हिन्दी पद्यानुवाद है। यह टीका अद्यतन अप्रकाशित है, इसका रचना काल संवत् 1801 तथा ग्रंथांक 323 है। इसका विस्तृत परिचय हमने **षट्पाहुड की पद्यानुवादयुक्त अप्रकाशित पाणडुलिपि** शीर्षक से 'अर्हत् वचन', इन्दौर, शोध त्रैमासिकी, वर्ष 13, अंक - 1, जनवरी 2001 में प्रकाशित करवाया है।

ताड़पत्रीय ग्रन्थ :

ताडपत्रीय ग्रन्थों के 3 वेष्टन - 326, 327, 328 हैं। प्रत्येक वेष्टन में एकाधिक ग्रन्थ हैं। वेष्टन 326 में द्वादशानुप्रेक्षा है। इसकी लिपि हलेयकन्नड होने से ये पढ़ी नहीं जा सकी, स्थिति आदि से अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होती है।

आदरणीय पं. चन्दनलाल जैन शास्त्री अपनी 15 वर्ष की वय सन् 1935-36 से इस संस्था व भण्डार की व्यवस्था देख रहे हैं। शास्त्रीजी बहुत ही विद्वान्, प्रतिष्ठाचार्य, समाजसेवी व मृदुस्वभावी हैं, वर्तमान में वे ट्रस्ट व सरस्वती भवन के मंत्री हैं। 80 की वय होने के कारण सीढ़ियाँ आदि चढ़ने में उन्हें कठिनाई होने के बावजूद वे हमारे साथ में द्वितीय मंजिल पर स्थित शास्त्र भंडार में तीनों दिन गये, शास्त्रों का मिलान करवाया तथा कुछ महत्वपूर्ण पांडुलिपियों की प्रशस्तियों का वाचन करवाया और हमें पूर्ण स्नेह व वात्सल्य दिया, हम उनके आभारी हैं। गुरुकुल के व्यवस्थापक श्री पृथ्वीराज जैन ने हमारे आवासादि की व्यवस्था करवाई तथा उपव्यवस्थापक श्री गैवीलाल जैन ने भण्डार के मिलान करने में हमारा सहयोग किया, ये सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

प्राप्त - 15.3.01

यह सर्वविदित है कि भारत में जैन धर्मावलम्बी धार्मिक दृष्टि से अल्पसंख्यक हैं किन्तु केन्द्र सरकार एवं अधिसंख्य प्रान्तीय सरकारों द्वारा औपचारिक रूप से जैनों को अल्पसंख्यक रूप में अधिसूचित न किये जाने के कारण हम ईसाई, मुस्लिम, बौद्ध, सिख एवं पारसी समुदायों के समान संवैधानिक संरक्षण नहीं प्राप्त कर पा रहे। दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल के नेतृत्व में जैन समाज द्वारा चलाये गये चरणबद्ध आन्दोलन के फलस्वरूप म.प्र. के यशस्वी मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंहजी ने म.प्र. के जैन समुदाय को अल्पसंख्यक घोषित कर दिया है। एतद् विषयक अधिसूचना क्रमांक एफ-11-18/98/54-2 दिनांक 29.5.2001 को जारी की जा चुकी है। हम एतदर्थ म.प्र. के माननीय मुख्यमंत्रीजी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

— सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001,83 - 90

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन विद्या संगोष्ठी एवं पुरस्कार समर्पण समारोह
इन्दौर, 3 - 5 मार्च 2001

■ डॉ. अनुपम जैन*

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा स्थापित एवं देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्य शोध केन्द्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में दिनांक 3 - 5 मार्च 2001 तक परमपूज्य **बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी महाराज** के ससंघ मंगल सान्निध्य में त्रिदिवसीय जैन विद्या संगोष्ठी एवं पुरस्कार समर्पण समारोह सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम के संयोजक पं. जयसेन जैन (सम्पादक - सन्मति वाणी) एवं श्री अरविन्दकुमार जैन (प्रबन्धक) थे।

3 मार्च 2001, अपरान्ह 2.00 बजे - उद्घाटन सत्र

अध्यक्षता - **प्रो. प्रभुनारायण मिश्र,** निदेशक - प्रबन्ध अध्ययन संस्थान, देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर

मुख्य अतिथि - **श्री सूरजमल बोबरा, इन्दौर**

विशेष अतिथि - **श्री दिलीप बोबरा,** उपाध्यक्ष - जैन एकेडेमिक फाउन्डेशन इन नार्थ अमेरिका (JAFNA), **अमेरिका**

संचालन - **श्रीमती रूपाली बंडी, इन्दौर**

मंगलाचरण - **पं. नाथूराम डोंगरीय, इन्दौर**

प्रो. पी. एन. मिश्र के सारगर्भित एवं प्रेरक उद्बोधन के उपरान्त उद्घाटन सत्र को सम्बोधित करते हुए पूज्य बालाचार्यजी ने कहा कि व्यक्ति पंच परमेष्ठी की आराधना करते - करते स्वयं परमेष्ठी बनने की क्षमता रखता है। उन्होंने ध्रुव आख्यान के कुछ अंशों से उदाहरण देते हुए कहा कि आज मन वाला मानव मनमानी कर रहा है, उसे जो रूचिकर लगता है वही करता है, वह सुनीति की परवाह नहीं करता। मुख्य अतिथि ने अपने वक्तव्य में कहा कि इतिहासज्ञ जैन सस्कृति के ऐतिहासिक तथ्यों को बिना किसी पूर्वाग्रह के निष्पक्ष रूप से रखे। जैन इतिहास या तो तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है या उसे नजरअन्दाज कर दिया जाता है। उनका वक्तव्य हम आगामी पृष्ठों पर उद्धृत कर रहे हैं।

इस सत्र में सर्वसम्मति से डॉ. धर्मचन्द जैन, कुरुक्षेत्र द्वारा प्रस्तुत तथा सर्वानुमति से अनुमोदित प्रस्ताव द्वारा तालिबानों द्वारा भगवान बुद्ध की मूर्तियों को नष्ट करने की निंदा की गई। प्रस्ताव का पाठ निम्नवत् है -

'बौद्ध धर्म भारत में उद्भूत और श्रमण संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। इसके प्रणेता भगवान बुद्ध की प्रतिमाओं तथा समस्त मूर्तियों को तालिबान द्वारा तोड़ा जा रहा है। हम तालिबान से अपील करते हैं कि प्राचीन संस्कृति की धरोहरों व आस्था के केन्द्र इन मूर्तियों को न तोड़ा जाये।' (बाद में तालिबान ने इन मूर्तियों को ध्वस्त कर दिया - सम्पादक)

3 मार्च 2001, अपरान्ह 4.00 बजे - प्रथम सत्र

विषय - **जैन इतिहास**

अध्यक्षता - **पं. शिवचरनलाल जैन,** अध्यक्ष - तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ, **मैनपुरी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संचालन – **पं. जयसेन जैन,** सम्पादक - सन्मति वाणी, **इन्दौर**

मंगलाचरण – **पं. रतनलाल जैन शास्त्री, इन्दौर**

वक्ता – **डॉ. प्रकाशचन्द जैन, इन्दौर**
'हिन्दी के जैन विलास काव्यों में ऐतिहासिक दृष्टि'
श्री नरेशकुमार पाठक, इन्दौर
'म.प्र. का जैन पुरातत्व'

3 मार्च 2001, रात्रि 8.00 बजे – द्वितीय सत्र – परिचर्चा

विषय – **'पांडुलिपियों के संरक्षण की आवश्यकता एवं सावधानियाँ'**

अध्यक्षता – **डॉ. धर्मचन्द जैन,** पूर्व प्राध्यापक - संस्कृत कुरुक्षेत्र वि.वि., **कुरुक्षेत्र**

संचालन – **डॉ. अनुपम जैन,** सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, **इन्दौर**

मंगलाचरण – **पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी**

वक्ता – **डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज',** शोधाधिकारी - जैन साहित्य सूचीकरण परियोजना, C/o. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, **इन्दौर**

डॉ. महेन्द्रकुमार जैन द्वारा विषय के प्रस्तुतीकरण के उपरान्त उपस्थित विद्वानों ने विषय पर अपने विचार रखे।

4 मार्च 2001, प्रात: 8.00 बजे – पुरस्कार समर्पण समारोह

अध्यक्षता – **प्रो. नरेन्द्र धाकड़,** प्राचार्य - होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, **इन्दौर**

मुख्य अतिथि – **न्यायमूर्ति श्री एन. के. जैन,** म.प्र. उच्च न्यायालय, **इन्दौर**

विशेष अतिथि – **श्री नेमिनाथ जैन,** अध्यक्ष - प्रेस्टिज समूह, **इन्दौर**

संचालन – **डॉ. अनुपम जैन,** सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, **इन्दौर**

मंगलाचरण – **पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, इन्दौर**

भजन – **प्रो. के.के. जैन,** प्राध्यापक - भौतिकी, होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, **इन्दौर**

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार - 1999 डॉ. प्रकाशचन्द जैन - इन्दौर को उनके शोध प्रबन्ध *'हिन्दी के जैन विलास काव्यों का उद्भव और विकास (वि.सं. 1520 से 1900 तक)'* पर प्रदान किया गया। इस पुरस्कार की राशि रु. 25,000/- शाल, श्रीफल व स्मृति चिन्ह के साथ समर्पित की गई। यह पुरस्कार बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी महाराज के सान्निध्य में न्यायमूर्ति श्री एन. के. जैन एवं प्रो. नरेन्द्र धाकड़ द्वारा प्रदान किया गया। निर्णायक मंडल की ओर से पुरस्कार की घोषणा, चयन की प्रक्रिया, पुरस्कृत कृति के महत्व पर प्रकाश डाला डॉ. नलिन के. शास्त्री, बोधगया ने। श्रीमती शांतादेवी रतनलाल बोबरा की स्मृति में स्थापित ज्ञानोदय पुरस्कार - 99 प्रो. हम्पानागराजय्या, बैंगलोर को उनकी कृति **'A History of Rastrakutas of Malkhed and Jainism** पर प्रदान किया गया। इसी अवसर पर ज्ञानपीठ की प्रतिष्ठित शोध त्रैमासिकी ''अर्हत् वचन'' में प्रकाशित होने वाले सर्वश्रेष्ठ शोध आलेखों पर दिए जाने वाले अर्हत् वचन पुरस्कारों में प्रथम पुरस्कार **कुमार अनेकांत जैन – लाडनूं** को उनके आलेख *'जैन दर्शन में कालद्रव्य'* पर प्रदान किया गया। द्वितीय पुरस्कार **आचार्य गोपीलाल अमर – दिल्ली** तथा तृतीय **स्व. श्री जयचंद शर्मा – बीकानेर**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को प्रदान किया गया। इस अवसर पर ओंकारजी कस्तूरचंद ट्रस्ट इन्दौर द्वारा दो पुरस्कारों की स्थापना की घोषणा की गई - एक **ज्ञानोदय ज्योतिष तंत्र - मंत्र पुरस्कार** जो कि इस क्षेत्र में विगत 5 वर्षों में किए गए मौलिक प्रकाशित / अप्रकाशित शोध हेतु प्रदान किया जायेगा। दूसरा **ज्ञानोदय आयुर्वेद पुरस्कार** जो आयुर्वेद के क्षेत्र में विगत 5 वर्षों के प्रकाशित / अप्रकाशित शोध कार्य हेतु प्रदान किया जायेगा। प्रत्येक की राशि 11000.00 है।

इसी सत्र में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित तीन ग्रंथों का विमोचन किया गया। प्रथम डॉ. नरेश कुमार पाठक द्वारा सृजित 'मध्यप्रदेश के जैन शिल्प' है। इसके संपादक डॉ. अनुपम जैन व सहयोगी श्री अरविन्द कुमार जैन हैं। द्वितीय श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के आर्थिक अनुदान से कुंदकुंद ज्ञानपीठ इन्दौर में संचालित जैन शास्त्र सूचीकरण परियोजना के अंतर्गत ''भट्टारक यशकीर्ति दि. जैन सरस्वती भवन ऋषभदेव की हस्तलिखित ग्रंथ सूची'' का विमोचन हुआ। इस सूचीपत्र का संपादन ज्ञानपीठ के मानद सचिव और सूचीकरण परियोजना के निदेशक डॉ. अनुपम जैन तथा सूचीकरण परियोजना के शोधाधिकारी डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज' ने किया है। तृतीय पं. नाथूराम डोंगरीय जैन की कृति जैन धर्म - विश्वधर्म का श्री चन्दनलाल बंडी कृत अंग्रेजी अनुवाद Jain Dharma - Vishwa Dharma का विमोचन हुआ।

प्रारंभ में डॉ. अनुपम जैन मानद सचिव - कुंदकुंद ज्ञानपीठ ने संस्था के परिचय एवं प्रगति से अवगत कराया और पुरस्कारों के महत्व व चयन प्रक्रिया पर प्रकाश डाला। अंत में ज्ञानपीठ के मानद निदेशक प्रो. ए.ए. अब्बासी, पूर्व कुलपति - देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर के उद्बोधन और अध्यक्षीय वक्तव्य के उपरांत पूज्य बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागर जी महाराज का मंगल आशीर्वचन हुआ।

4 मार्च 2001, मध्यान्ह 2.00 बजे - तृतीय सत्र

विषय - **जैनधर्म एवं विज्ञान**

अध्यक्षता - **प्रो. एस. सी. अग्रवाल,** अध्यक्ष - विज्ञान संकाय, चौधरी चरणसिंह वि.वि., **मेरठ**

मुख्य अतिथि - **डॉ. महेन्द्र पांड्या,** अध्यक्ष - फेडरेशन ऑफ जैन एशोसिएशन इन नार्थ अमेरिका (JAINA), **अमेरिका**

संचालन - **डॉ. धर्मचन्द जैन, कुरुक्षेत्र**

वक्ता -

1. **प्रो. नलिन के. शास्त्री,** समायोजक - महाविद्यालय विकास परिषद, मगध वि.वि., **बोधगया**
   जैन धर्म एवं विज्ञान (जीव विज्ञान के विशेष सन्दर्भ में)
2. **श्री दीपक जाधव, व्याख्याता - गणित, जवाहरलाल नेहरू शा.उ.मा.वि., बड़वानी**
   आचार्य नेमिचन्द्र सि.च. के ग्रन्थों का गणितीय वैशिष्ट्य
3. **डॉ. संजीव सराफ,** पुस्तकालयाध्यक्ष - शासकीय महाविद्यालय, **पथरिया** (सागर)
   जैन पुस्तकालयों के वर्गीकरण की विशेष रीति
4. **कुमार अनेकान्त जैन,** शोध छात्र - जैन विश्व भारती संस्थान, **लाड़नूँ**
   जैन दर्शन की वैज्ञानिकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4 मार्च 2001, अपरान्ह 4.00 बजे – चतुर्थ सत्र

विषय – शोध संस्थानों की समस्याएँ एवं समाधान

अध्यक्षता – प्रो. एस. सी. अग्रवाल, मेरठ

मुख्य अतिथि – श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल, इन्दौर

संचालन – डॉ. नलिन के. शास्त्री, बोधगया

मंगलाचरण – कुमारी अनुप्रिया जैन, इन्दौर

सर्वप्रथम प्रो. भागचन्द्र जैन 'भास्कर', निदेशक - पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी के शोध पत्र ''जैन शोध संस्थानों के टूटते बिखरते कंगूरे'' का वाचन और संस्थानों से सम्बद्ध समस्याएँ तथा निदान पर अपने विचार डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज' ने रखें। डॉ. अभय प्रकाश जैन - ग्वालियर, डॉ. संजीव सराफ - सागर, श्री कुमार अनेकांत जैन - लाडनूं आदि ने अपने विचार व्यक्त किए, किन्तु सबसे अधिक चर्चित रहा सुदीर्घ समय से शोध संस्थानों को प्रगति पथ पर बढ़ाने के अनुभवों पर आधारित डॉ. अनुपम जैन का वक्तव्य। इन्होंने अपने उद्‌बोधन में शोध संस्थानों की समस्याओं पर विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया एवं कहा कि 'फलते - फूलते संस्थान अचानक अपनी चमक प्रबंधन की महत्वाकांक्षाओं के चलते खो देते हैं। कोई भी संस्था संचालक के समर्पण के बिना प्रगति नहीं कर सकती एवं जब प्रबंधन विकल्प खड़ा करने लगता है तब संचालक का समर्पण समाप्त हो जाता है।'

प्रसिद्ध समाजसेवी एवं बहुश्रुत व्यक्तित्व **श्री अजित कुमार सिंह कासलीवाल** ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि शोध संस्थान के प्रबंधकों को स्वयं प्रबंधक न मानते हुए संस्थान के एक कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करना चाहिए तभी संस्थान प्रगति कर सकता है। इसकी मिसाल डॉ. अनुपम जैन एवं उनके द्वारा संचालित कुंदकुंद ज्ञानपीठ है। इस सत्र में पूज्य बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी महाराज का सान्निध्य रहा। पूज्य बालाचार्यश्री ने कहा - 'कुंदकुंद ज्ञानपीठ अच्छी प्रगति कर रहा है, इसका कारण है कि डॉ. अनुपम जैन जैसा कर्मठ एवं दूरदृष्टि सम्पन्न विद्वान इसे गति दे रहा है, इसके संचालकों व कार्यकर्त्ताओं को हमारा आशीर्वाद सदा रहेगा।'

5 मार्च 2001, प्रात: 8.00 बजे – समापन सत्र

अध्यक्षता – श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, **इन्दौर**

मुख्य अतिथि – न्यायमूर्ति श्री अभय गोहिल, म.प्र. उच्च न्यायालय, **इन्दौर**

संचालन – डॉ. प्रकाशचन्द जैन, इन्दौर

मंगलाचरण – पं. रतनलाल जैन शास्त्री, इन्दौर

इस समारोह में प्रो. धर्मचन्द्र जैन ने संपूर्ण गोष्ठी में विद्वतजनों द्वारा पठित आलेखों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया। समागत विद्वानों का सम्मान किया गया। मान. श्री गोहिल जी ने अपने वक्तव्य में कहा कि सुखद व उज्ज्वल भविष्य की कल्पना तभी साकार होगी जब देश के गौरवपूर्ण अतीत पर दृष्टिपात करेंगे। इस हेतु भारत की प्राचीन भाषा 'प्राकृत' व 'पालि' का अध्ययन आवश्यक है। इस क्षेत्र में कुंदकुंद ज्ञानपीठ द्वारा किये जा रहे प्रयास प्रशंसनीय व अनुकरणीय है। समारोह के अध्यक्ष, जो ज्ञानपीठ के भी अध्यक्ष हैं, ने अपनी संस्था की भावी रूपरेखा पर प्रकाश डाला। पूज्य बालाचार्य श्री ने सभी को आशीर्वाद दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि श्री सूरजमल बोबरा का उद्बोधन

परम श्रद्धेय बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी महाराज के चरणों में सादर नमोस्तु।

आदरणीय अध्यक्ष महोदय, जैन चिंतन के उपस्थित मर्मज्ञ विद्वान्गण एवं सुधी श्रोता बंधु,

जैन दर्शन में पाँच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है, किन्तु क्या छठा नहीं है? मुझे कई बार लगता है कि छठा परमेष्ठी है और वह है सुधी श्रोता, श्रावक, इन पाँच परमेष्ठियों की ओर आस्था से देखने वाला मानव मन। बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी महाराज स्वयं प्रयोगधर्मी हैं, उन्होंने इस छठे परमेष्ठी को उसके सांसारिक रूप में रहते हुए भी शांति प्राप्त हो सके, ऐसे प्रयोग किये हैं। आज एक दुर्लभ योग है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के परिसर में ये परमेष्ठी अपने-अपने आसन पर विराजमान हैं, उन सभी को सादर प्रणाम।

इसे भी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का सौभाग्य कहा जाना चाहिये कि देश के मूर्धन्य विद्वान् इतिहास, दर्शन तथा विज्ञान के शोध कार्यों को गति देने के लिये, मार्ग ढूंढने के लिये, यहाँ एकत्रित हुए हैं। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के सभी शिल्पियों का हार्दिक अभिनन्दन एवं सभी विद्वानों का भाव भरा स्वागत।

शोध वास्तव में एक अन्तर्यात्रा है, जो सच्चाई को खोज लेने की अभिलाषा का नाम है। सभी विषयों के आचार्य और वैज्ञानिक शोधार्थी ही हैं जिन्होंने अपने आत्म चिंतन व अपने ऊपर किये गये प्रयोगों से इस संसार को, ज्ञान-विज्ञान को, स्वरूप व परिभाषा दी। राजा ऋषभ संभवतः प्रथम ज्ञात वैज्ञानिक हैं जिन्होंने संसार के क्रिया-कलापों, प्रकृति के स्वरूपों व मानव मस्तिष्क की तरंगों को समझा, उन्हें आधार दिया और उन्हें परिभाषित किया। इसी का विस्तार उनके गृहत्याग के रूप में हुआ और श्रमण चिंतन की दार्शनिक पीठ का पुनर्स्थापन हुआ। इसके बाद के कालों में भी यह शोध चलता रहा और वह आज भी जारी है।

गत्, वर्तमान और भावी में झांकने की ललक ही शोध का आधार है। यही ललक आज यहाँ उपस्थित विद्वानों की आँखों में दिखाई दे रही है। मैं इस ललक का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। 'इतिहास' शोध का एक महत्वपूर्ण विषय होता है। इतिहास के बन्द दरवाजे खुल जायें तो बहुत सी धुंध छट जाती है।

जैन इतिहास को समझने में शोधार्थी को कई अवरोधों का सामना करना पड़ता है, जैसे - (1) यद्यपि नेमिनाथ पूर्व श्रमण चिंतन के प्रभावी अस्तित्व के कई संकेत हैं, किन्तु इतिहासकारों ने अज्ञात इतिहास काल की परिभाषा में उसे कैद कर दिया है। (2) नेमि, पार्श्व व वर्द्धमान काल में श्रमण चिंतन के बहुआयामी अस्तित्व के कई प्रमाण हैं किन्तु राजनैतिक व धार्मिक आग्रहों के कारण उन्हें नष्ट व भ्रांतिपूर्ण कर दिया गया। (3) स्वयं जैन संघ ने अपने आंतरिक विभेद के कारण अपने इतिहास को कभी पारदर्शी आधार नहीं दिया। हम जानते हैं कि यदि चिंतन के ऐतिहासिक आधार को तर्कसंगत स्वरूप नहीं दिया गया तो जैन जीवन के कई पारम्परिक आधार खिसक जायेंगे। मेरा ऐसा सोचने का कारण है कि जैन परम्परा के वाहक चन्द्रगुप्त और खारवेल का इतिहास 1000 वर्षों तक अंधकार में रहा और जैन संघ ने कभी उसे अनावृत नहीं किया। चन्द्रगुप्त का इतिहास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदेशियों ने उजागर किया और 'खारवेल एक राष्ट्रवादी जैन सम्राट था, जिसने विदेशियों के आक्रमण से मगध को बचाया था', इन तथ्यों को जैन इतिहासकार प्रकाश में नहीं ला पाये। कुछ विदेशवासी इसे घोषित कर रहे हैं। मूर्तियों के विध्वंस, पांडुलिपियों के विनाश, तीर्थ स्थानों पर बलात् कब्जा कर लिये जाने तक को आज हम रिकार्ड नहीं कर पाये हैं। इसके लिये हम किसी से लड़ें नहीं, किन्तु यह कहने की स्थिति में हमें होना चाहिये कि यह हमारी लूटी हुई सम्पत्ति है। 'अफगानिस्तान का राजकुमार आर्द्रक श्रमण चिंतन समर्थक था', संभवत: यह हमनें जोर-शोर से उजागर किया होता तो अफगानिस्तान का एक बहुत बड़ा समूह तालिबान के खिलाफ खड़ा हो गया होता और 21वीं सदी के मुँह पर मूर्तिहंता सदी होने की कालिख न पुती होती। क्या कोई जैन इतिहासकार दावे के साथ कह सकता है कि अफगानिस्तान में एक भी जैन मूर्ति नहीं थी? इस संभावना को भी नहीं नकारा जा सकता कि वहाँ जैन मूर्तियाँ रहीं होंगी जिनका हमें पता नहीं है। ये सब वे तथ्य हैं जो इस ओर इशारा कर रहे हैं कि समस्त जैन संघ को अपने इतिहास को सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिये, भले ही 2-4 पंचकल्याणक हम न कर पायें। मूर्तिहंताओं का साहस अब बढ़ता ही जा रहा है। मोहम्मद गजनवी के बाद 2 मार्च 2001 का दिन इस क्रम का सबसे काला दिन है जब घोषित रूप से मूर्ति विनाश का तांडव रचा गया। मुझे भय है कि मूर्तिहंता कोई पागल किसी दिन कोई मिसाइल का मुँह गोम्मटेश्वर की मूर्ति की ओर न मोड़ दे। यह सोच घृणित है। समस्त विश्व को आज ही जागरूक होकर इस पर साहसिक प्रतिबन्ध लगाना चाहिये, अन्यथा हम सब देखते रह जायेंगे।

जैन विद्या संगोष्ठी का यह समागम जैन इतिहास पर छाई भ्रांतियों को दूर करने, ज्ञान-विज्ञान के लुप्त पृष्ठों को उजागर करने में सहायक हो, इस मंगल कामना के साथ अपने विचारों को विराम देता ।

संगोष्ठी के प्रथम सत्र के मुख्य अतिथि पद के लिये मुझे आमंत्रित कर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने सीधा संदेश दिया है कि वह जैन इतिहास के लिये कुछ मूलभूत रूप से करना चाहता है। ज्ञानपीठ के नीति नियोजकों को धन्यवाद व बधाई। आप सबका पुन: आभार।

3.3.2001 **- सूरजमल बोबरा**

साहित्याचार्यजी का चिर - वियोग

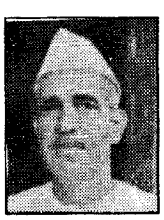

न्यायाचार्य पण्डित गणेशप्रसाद वर्णी के कृपापात्र मानस पुत्र, अनेकानेक पुराणों, ग्रन्थों और स्तोत्र संग्रहों के भाषानुवादक, जैन वांगमय के महान अध्येता तथा जैन विद्याओं के आमरण अवदानी, स्वनामधन्य विद्वान् पंडित, डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य अब हमारे बीच नहीं रहे। फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी, गुरुवार, 8 मार्च 2001 की रात्रि में सवा बजे, सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में बड़े बाबा को नमन करते हुए उन्होंने समाधिमरण प्राप्त किया। उनके जाने से बीसवीं शताब्दी की आगम अनुयायी पण्डित परम्परा का प्रमुख प्रकाश-स्तम्भ ढह गया।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की उनके प्रति विनम्र श्रद्धांजलि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

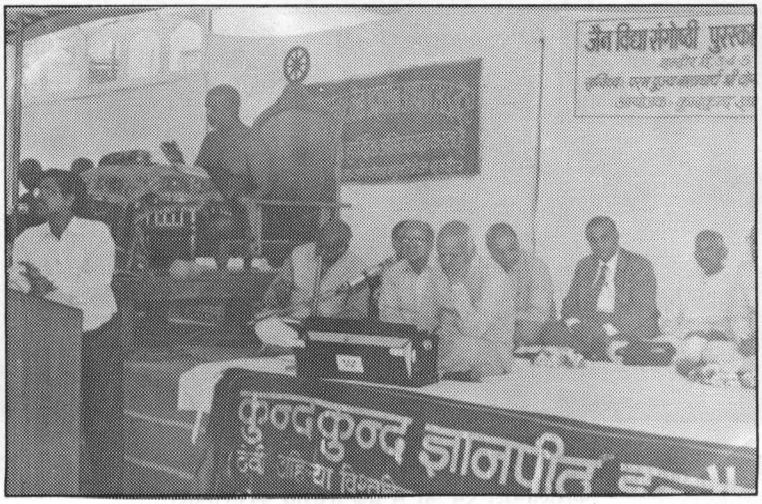

पुरस्कार समर्पण समारोह के मंच का एक दृश्य

डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, इन्दौर को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार - 99 से सम्मानित करते हुए बायें से डॉ. अनुपम जैन, श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, डा. नलिन के. शास्त्री, प्रो. नरेन्द्र धाकड़, प्रो. अब्बासी, न्यायमूर्ति श्री एन.के. जैन, श्री नेमनाथ जैन, श्री कैलाशचन्द चौधरी, श्री महाराजाबहादुरसिंह कासलीवाल

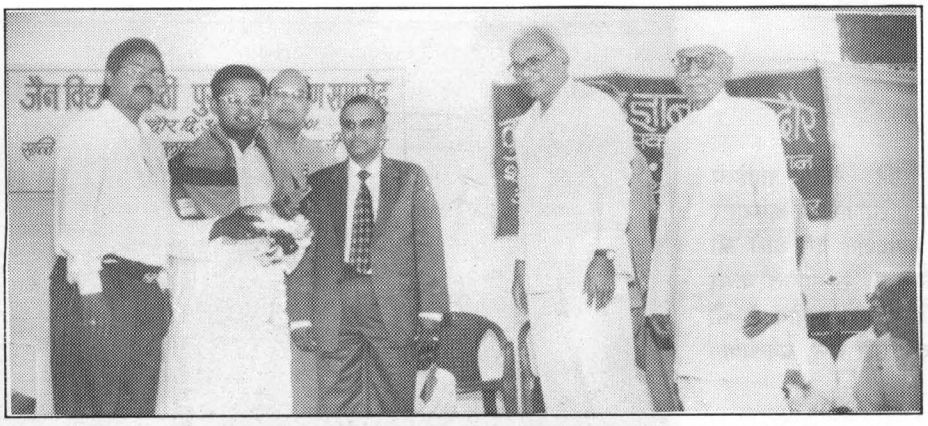

कुमार अनेकान्त जैन, लाडनूँ को प्रथम अर्हत् वचन पुरस्कार - 99 से सम्मानित करते हुए डॉ. अनुपम जैन, प्रो. एस.के.बंडी, प्रो. नरेन्द्र धाकड़ (प्राचार्य होलकर विज्ञान महाविद्यालय), न्यायमूर्ति श्री एन.के. जैन एवं पं. नाथूलाल जैन शास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्या संगोष्ठी, मार्च 2001

पूर्व निदेशक प्रो. नवीन सी. जैन को निस्पृह सेवाओं हेतु सम्मानित करते हुए श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल एवं श्री चन्द्रकुमारसिंह कासलीवाल

वर्तमान निदेशक प्रो. ए.ए. अब्बासी को सम्मानित करते हुए प्रो. एस.के. बंडी, डॉ. अनुपम जैन, प्रो. नरेन्द्र धाकड़ एवं श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल

ज्ञानपीठ की जैन साहित्य सूचीकरण परियोजना में कम्प्यूटर विषयक मार्गदर्शन देने वाले श्री मुकेश जैन को सम्मानित करते हुए प्रो. अब्बासी। समीप है श्री अरविन्द कुमार जैन, प्रबन्धक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्या संगोष्ठी, मार्च 2001

डॉ. दिलीप बोबरा – अमेरिका का स्वागत करते हुए संगोष्ठी संयोजक पं. जयसेन जैन, सम्पादक – सन्मति वाणी

प्रो. नरेन्द्र धाकड़, प्राचार्य होलकर विज्ञान महाविद्यालय का स्वागत करते हुए निदेशक प्रो. अब्बासी

डॉ. सविता जैन, सम्पादिका – आदित्य आदेश, उज्जैन का स्वागत करते हुए प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल, मेरठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्या संगोष्ठी, मार्च 2001

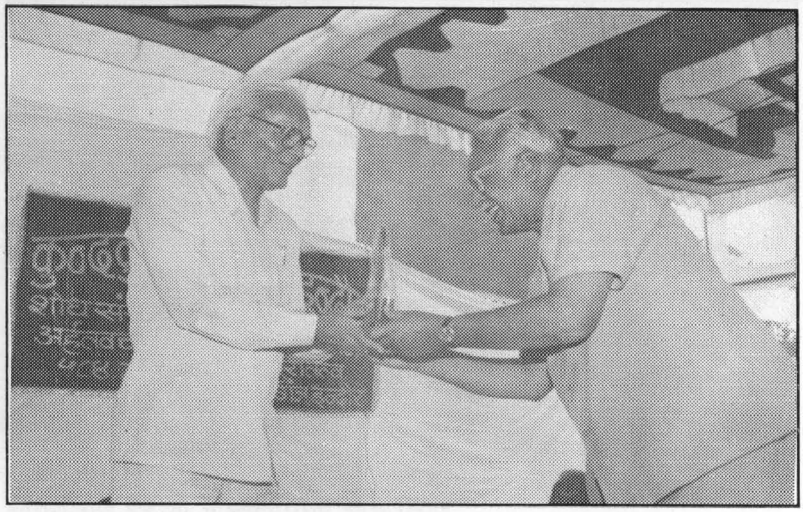

न्यायमूर्ति श्री एन. के. जैन को प्रतीक चिन्ह प्रदान कर सम्मानित करते हुए प्रो. अब्बासी

प्रो. पी.एन. मिश्र को प्रतीक चिन्ह प्रदान करते हुए पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी

युवा गणितज्ञ श्री दिपक जाधव, बड़वानी को श्रीफल भेंट कर आशीर्वाद देते हुए वरिष्ठ गणितज्ञ प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल, मेरठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

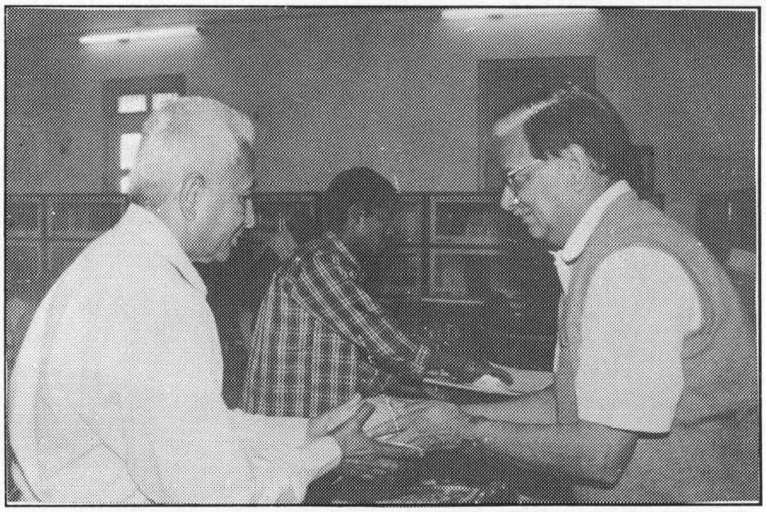

प्रो. धर्मचन्द्र जैन, कुरुक्षेत्र को सम्मानित करते हुए प्रो. सुरेश चन्द्र अग्रवाल, मेरठ

भट्टारक यशकीर्ति हस्तलिखित शास्त्र भंडार, ऋषभदेव (राज.) की प्रकाशित सूची का विमोचन कराते हुए डॉ. अनुपम जैन। समीप में श्री पाठक, श्री अरविन्द जैन, प्रो. धाकड़, डॉ. महेन्द्रकुमार जैन, न्यायमूर्ति श्री एन.के. जैन

पं. नाथूराम जैन डोंगरीय की पुस्तक जैन धर्म – विश्व धर्म के अंग्रेजी अनुवाद का विमोचन करते हुए न्यायमूर्ति श्री एन.के. जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्या संगोष्ठी, मार्च 2001

संगोष्ठी को सम्बोधित करते हुए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित डॉ. प्रकाशचन्द जैन, इन्दौर

गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए प्रो. नलिन के. शास्त्री, बोधगया

गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए प्रो. धर्मचन्द्र जैन, कुरुक्षेत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्या संगोष्ठी, मार्च 2001

समापन सत्र के मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति श्री अभय गोहिल संबोधित करते हुए

गोष्ठी को संबोधित करते हुए ज्ञानपीठ पुस्तकालय के वर्गीकरण कार्य के विशिष्ट सहयोगी डॉ. संजीव सराफ, सागर

संगोष्ठी समापन समारोह के मंच का एक दृश्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्या संगोष्ठी, मार्च 2001

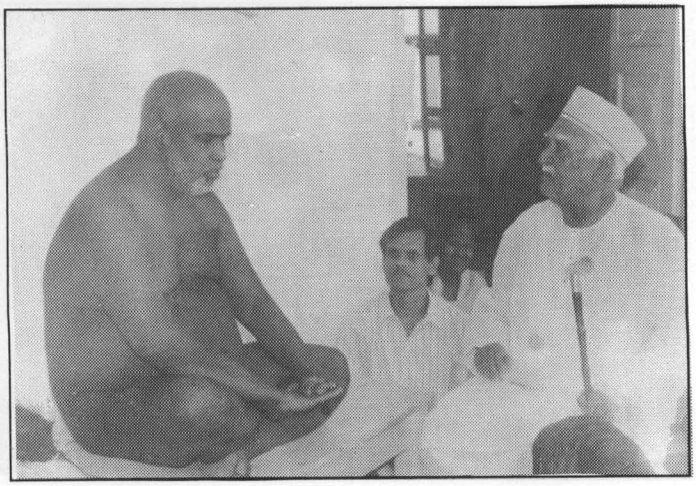

संगोष्ठी के मध्य सिरिभूवलय ग्रंथ अनुवाद एवं सम्पादन योजना के सन्दर्भ में बालाचार्यश्री से चर्चा करते हुए श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल

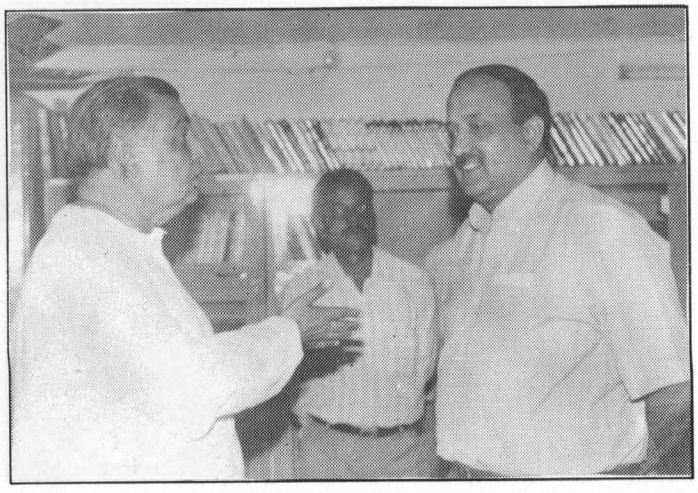

श्री अनिल भंडारी को ज्ञानपीठ की भावी योजनाओं की जानकारी देते हुए श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल

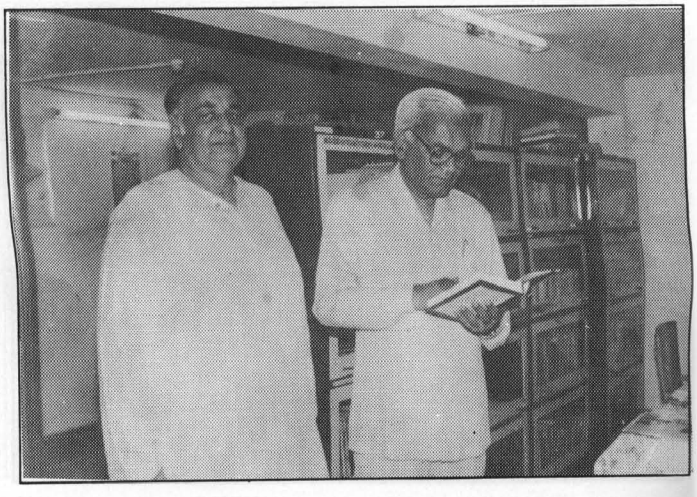

ज्ञानपीठ पुस्तकालय में न्यायमूर्ति श्री एन. के. जैन समीप खड़े हैं ज्ञानपीठ के कोषाध्यक्ष श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ – कीर्त्तिः

वर्द्धमानो महावीरो नाथो त्रिशलानन्दनः।
बभूव भारते देशे सन्मतिः तीर्थनायकः॥

चरमवीरोऽतिवीरो यः हिंसानलातिपीडितान्।
दिव्यवचोऽमृतौघैन शान्तिमददात् निरुपमाम्॥

तस्य गौतमो नाम्नो प्रथमवरगणाग्रणी।
निरक्षरीं ध्वनिं महतीं साक्षरतामुपानयत्॥

एतत्परम्परामध्ये भुवि वन्द्यो महायतिः।
निर्गन्थो मङ्गलं कुन्दकुन्दारव्योऽवतरत् मुनिः॥

कुन्दप्रभाप्रणयिकीर्तिः शतोपमप्राभृतकरः।
अज्ञानतिमिरान्धानां नयनोन्मेषं सोऽकरोत्॥

येन समयप्रबद्धेन वराध्यात्मगवेषिणाम्।
ज्ञानपीठं सुसंस्थाप्य अर्हत्वचनं प्रतिष्ठितम्॥

तत्पीठे समारूह्य तपत्यागप्रभावनं।
कुर्वाणः बहवो श्रमणाः अभूवन्राष्ट्रगौरवाः॥

तन्नन्दं जनानन्दं सच्चिदानन्दरूपकं।
विद्यानन्दं निजानन्दनन्दितं प्रणमाम्यहम्॥

श्रमणानां सुप्रसादेन मार्गप्रभातत्परः।
जिनोपदिष्टधर्मस्य रुचिकः श्रावकोत्तमः॥

देवकुमारसिंहारव्यो लौकान्तिक समप्रभः।
पूर्वपीठप्रभावार्थं पीठं संस्थापयत् वरं॥

अनुपमः कार्ये कुशल; सुमेधा गणितप्रियः।
रीतिनीतिपटुः सम्यगयच्छत् एतद गतिम्॥

ज्ञानलक्ष्ये संलग्न; न श्रमार्न्त; गुरुर्गुरुः।
नाथूलालारव्यो शास्त्री श्रुतरक्षापरोऽभवत्॥

विद्वासः प्राचार्यश्च समवेताः पुरस्कृताः।
स्वं स्वं ज्ञानवैदुष्यं लब्ध्वा तोषं प्राप्नुवन्॥

सततं पूर्णविश्वाग्रे नेतुं भारतभारतीं।
इदं पीठं शुभं जीयात् व्यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

23.6.97

शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी
अध्यक्ष - तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित साहित्य

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
* 1.	जैनधर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81 - 86933 - 00 - X	200.00
2.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 01 - 8	1.50
3.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 02 - 6	1.50
4.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 03 - 4	3.00
5.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 04 - 2	4.00
6.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 05 - 0	4.00
7.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 06 - 9	4.00
8.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 07 - 7	4.00
9.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 08 - 5	6.00
10.	नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 09 - 3	6.00
11.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 10 - 7	6.00
12.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 11 - 5	6.00
13.	The Jaina Sanctuaries of the Fortress of Gwalior	Dr. T.V.G. Shastri	81 - 86933 - 12 - 3	500.00
14.	जैन धर्म - विश्व धर्म	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81 - 86933 - 13 - 1	10.00
15.	मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 14 - X	70.00
16.	Jain Dharma - Vishwa Dharma	Pt. Nathuram Dongariya Jain	81 - 86933 - 15 - 8	20.00
17.	अमर ग्रन्थालय में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा. - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81 - 86933 - 16 - 6	20.00
18.	आचार्य कुन्दकुन्द श्रुत भण्डार, खजुराहो में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81 - 86933 - 17 - 4	20.00
19.	मध्यप्रदेश का जैन शिल्प	श्री नरेशकुमार पाठक	81 - 86933 - 18 - 2	300.00
20.	भट्टारक यशकीर्ति दिग. जैन सरस्वती भण्डार, ऋषभदेव में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81 - 86933 - 19 - 0	20.00
21.	जैनाचार विज्ञान	मुनि सुनीलसागर	81 - 86933 - 20 - 4	20.00
22.	समीचीन सार्वधर्म सोपान	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81 - 86933 - 21 - 2	20.00

* अनुपलब्ध

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 13, अंक - 2, अप्रैल 2001, 91 - 92

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान ऋषभदेव जयन्ती एवं संगोष्ठी

आगरा - 18 - 19 मार्च 2001

■ राजीव जैन*

देश की इतिहास, पुरातत्व, साहित्य विषय की अग्रणी शोध संस्था ऋषभदेव प्रतिष्ठान की ओर से एम. डी. जैन कॉलेज सभागार, आगरा में तीर्थंकर ऋषभदेव महोत्सव एवं संगोष्ठी का 19 - 19 मार्च को आयोजन किया गया।

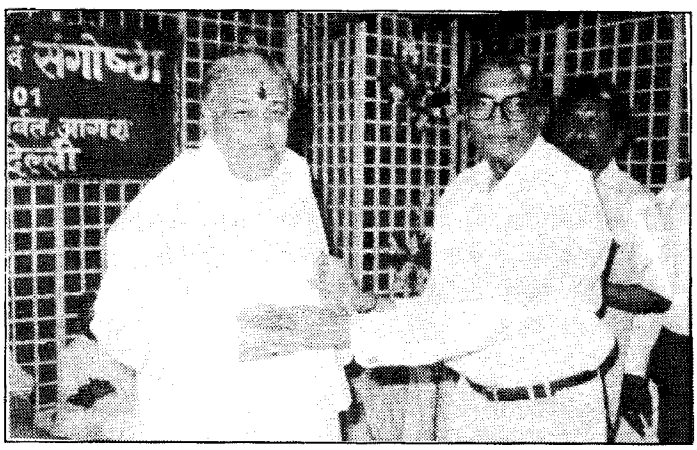

उद्घाटन सत्र के मुख्य वक्ता आचार्य प्रभाकर मिश्र (पूर्व कुलपति - दरभंगा विश्वविद्यालय) का शाल ओढ़ाकर सम्मान करते हुए ऋषभदेव प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री स्वरूपचन्द जैन, आगरा

यह संगोष्ठी परमपूज्य मुनिश्री पुलकसागरजी महाराज एवं क्षुल्लक श्री प्रगल्भसागरजी महाराज के सान्निध्य में प्रारम्भ हुई, जिसकी अध्यक्षता आगरा मण्डल के आयुक्त श्री एस. एन. झा ने की। दीप प्रज्ज्वलन नगर के सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री रतनलालजी जैन बैनाड़ा ने किया। मुख्य वक्ता के रूप में दरभंगा विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति आचार्य प्रभाकर मिश्र उपस्थित थे। ऋषभदेव प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री स्वरूपचन्दजी जैन 'मार्सन्स' ने सभी अतिथियों का अभिनन्दन किया। प्रतिष्ठान के महासचिव श्री हृदयराज जैन, दिल्ली ने प्रतिष्ठान की ओर से पूर्व में आयोजित संगोष्ठियों की जानकारी दी एवं प्रतिष्ठान की स्थापना का उद्देश्य तथा भावी योजनाओं से अवगत कराया।

भगवान ऋषभदेव के सामाजिक अवदान पर बोलते हुए उनके द्वारा प्रवर्तित असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य एवं शिल्प इन छह विद्याओं की जानकारी दी। उन्होंने कहा कि इस देश का नाम भगवान ऋषभदेव के प्रथम पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम से ही 'भारत' प्रचलित हुआ।

सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद् प्रो. मुनीशचन्द्र जोशी, पूर्व महानिदेशक - भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, ने कहा कि ऋषभदेव भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। आपने वेदों में उल्लिखित वातरशना आदि मुनियों की परम्परा को जैन परम्परा में संदर्भित बताया। श्री जोशी ने कहा कि बौद्ध परम्परा में सिखी नामक जिन बुद्ध का उल्लेख है वह ऋषभदेव ही प्रतीत होते हैं क्योंकि उन्हें भी ऋषभदेव की तरह शिखर धारण करने वाला बताया है।

डॉ. चन्दनलाल पाराशर ने आचार्य जिनसेन रचित 'आदि पुराण' के मंगलाचरण से अपने वक्तव्य का प्रारम्भ करते हुए ऋषभदेव को मानव संस्कृति का सृष्टा बताते हुए उनके द्वारा प्रवर्तित सद्विचार, सद्विद्या एवं सदाचार की आधुनिक युग में महत्ता बतलाई।

महोत्सव के प्रमुख वक्ता एवं सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य प्रभाकर मिश्र (पूर्व कुलपति - दरभंगा विश्वविद्यालय) ने भगवान ऋषभदेव के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर प्रकाश हालते हुए कहा कि कृषि परम्पराओं को स्थापित करने का श्रेय ऋषभदेव को है। उनके द्वारा प्रवर्तित अक्षर विद्या आज ब्राह्मी लिपि के रूप में सम्पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व की आदिलिपि मानी जाती है। उन्होंने कहा कि सत्य, ज्ञान एवं प्रकाश का उदय ऋषभ शब्द से ही हुआ है। उन्होंने वेदों एवं उपनिषदों के अनेक प्रमाण देते हुए भारत देश का नाम भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से प्रवर्तित बतलाया।

कार्यक्रम का संचालन सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद ने अपने चिरपरिचित प्रभावक अन्दाज में किया।

संगोष्ठी का प्रथम सत्र डॉ. मुनीशचन्द्र जोशी, पूर्व महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की अध्यक्षता में प्रारंभ हुआ। इस सत्र के प्रमुख वक्ता डॉ. धर्मवीर शर्मा, अधीक्षक पुरातत्वविद्, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, आगरा ने फतेहपुर सीकरी का जैन पुरा-वैभव विषय पर अपना व्याख्यान स्लाइड्स के माध्यम से प्रस्तुत किया। डॉ. शर्मा ने फतेहपुर सीकरी एवं उसके आसपास के क्षेत्रों से प्राप्त मूर्तियों एवं अन्य पुरातात्विक महत्व के अवशेषों का वर्णन करते हुए कहा कि यह क्षेत्र अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध रहा है। इसमें हुए उत्खनन कार्य की जानकारी देते हुऐ उन्होंने कहा कि यह क्षेत्र कभी जैन संस्कृति एवं मंदिरों का समूह रहा है। यहाँ की उत्कृष्ट कला के उदाहरण के रूप में यहां से प्राप्त जैन सरस्वती की प्रतिमा की विशेष महत्ता से परिचित कराया तथा कहा कि संपूर्ण देश में इससे सुन्दर सरस्वती की प्रतिमा नहीं है। इस सत्र का संचालन प्रतिष्ठान के संयुक्त महासचिव, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर के प्रोफेसर डॉ. अशोक जैन ने किया।

संगोष्ठी का द्वितीय सत्र आचार्य प्रभाकर मिश्र की अध्यक्षता में प्रारंभ हुआ। इस सत्र में डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री, दिल्ली एवं प्रोफेसर सत्यपाल नारंग, संस्कृत विभागाध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय ने ''संस्कृत का प्राचीनतम व्याकरण-कातन्त्र'' पर अपने विचार व्यक्त किये। डॉ. शास्त्री ने बताया कि हजारों वर्ष पूर्व कातन्त्र व्याकरण की परम्परा प्रचलित रही है। डा. नारंग ने कातन्त्र व्याकरण की महत्ता को बतलाते हुये कहा कि पाणिनि आदि के व्याकरणों की अपेक्षा कातन्त्र सरलतम व्याकरण है जिसका प्रचलन विदेशों तक में रहा है।

संगोष्ठी के तृतीय सत्र में कातन्त्र व्याकरण पर ही डॉ. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ एवं डॉ. जानकी प्रसाद द्विवेदी, वाराणसी ने विस्तृत प्रकाश डालते हुऐ इस व्याकरण के अध्ययन को पुनः प्रारंभ करने पर जोर दिया। इस सत्र का संचालन प्रो. अशोक जैन, ग्वालियर ने किया।

द्वितीय दिवस 19.3.2001 का सत्र 'आगरा जनपद के जैन कवियों का हिन्दी साहित्य को योगदान' पर केन्द्रित रहा। जिनमें डा. रवीन्द्रकुमार जैन (मद्रास) ने 'बनारसी दास', श्री नीरज जैन (सतना) ने 'भूधरदास' डा. मक्खनलाल पाराशर (फिरोजाबाद) ने 'बह्मगुलाल', डा. कपूरचंद जैन (खतौली) ने 'भैया भगवतीदास, डा. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' (वाराणसी) ने 'द्यानतराय' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला।

इस सत्र के अध्यक्ष आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. जी.के. अग्रवाल ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि यह आगरा जनपद के लिये अत्यन्त गौरव का विषय है कि हिन्दी, संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य को शिखर पर पहुँचाने वाले ऐसे महान जैन कवियों का आगरा जनपद में जन्म हुआ।

भोजनोपरान्त ''राष्ट्र निर्माण में जैन महिलाओं का योगदान'' विषय पर संगोष्ठी आयोजित हुई जिसकी अध्यक्षता इतिहासविद् प्रो. प्रतिमा अस्थाना (पूर्व कुलपति गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने की। सर्वप्रथम मंगलाचरण डा. जयश्री जैन, आगरा ने किया। तत्पश्चात् प्राचार्या डॉ. मालती जैन, मैनपुरी ने जैन महिलाओं के समाज को प्रत्येक क्षेत्र में दिये गये योगदान पर अपने ओजस्वी विचार प्रकट किये। गोष्ठी को प्रो. पुष्पलता जैन (नागपुर), डा. सुधा जैन (बिलासपुर), डा. नगीना जैन (आगरा), डॉ. ज्योति जैन (खतौली), डॉ. पुष्पा सिंघई (वाराणसी), डॉ. कल्पना जैन (आगरा), डॉ. विमला जैन (फिरोजाबाद), श्रीमती सरोज जैन (बीना), डॉ. नीलम जैन (गाजियाबाद) आदि विदुषी महिलाओं ने सम्बोधित किया।

* मंत्री - ऋषभदेव प्रतिष्ठान,
आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्ध शोध की बोधक – सम्पादकीय

अर्हत् वचन (जनवरी 2001) में प्रकाशित आदरणीय डॉ. अनुपम जैन द्वारा जैन शोध संस्थानों पर लिखी सम्पादकीय को पढ़कर मानों ऐसा लगा कि जैसे बहुत समय से सभी विद्वानों, श्रुत प्रेमियों की पीड़ा को साक्षात् अनुभव करके सारा दर्द लिख दिया गया हो। पृष्ठ 7 पर जो सप्त स्वर्ण वाक्य लिखे हैं उन्हें तो संगमरमर की पट्टियों पर खुदवाकर प्रत्येक शोध केन्द्र की दीवारों पर लगवा देना चाहिये। **ये सारी बातें सम्पादक महोदय के जीवन के कटु अनुभवों की फलित प्रतीत हो रही हैं।**

शोध कार्यों की गरिमा को सुरक्षित रखने व उसे उत्तरोत्तर प्रगतिशील बनाये रखने के लिये विद्वान् आरम्भ से ही विचार करते आये हैं। डॉ. अनुपम जैन ने आज जबकि इस वर्षों की चुप्पी को तोड़ा है तब मैं भी चाहता हूँ कि इस विषय पर राष्ट्रीय बहस हो। मैं कुछ प्राचीन दिग्गज विद्वानों के विचारों को भी यहाँ उद्घृत करना आवश्यक समझता हूँ ताकि सम्पादक महोदय ने जो क्रांति बीज श्रुत प्रेमियों के दिलों में बोये हैं वे पल्लवित हो सकें। पं. सुखलाल संघवी प्रख्यात विचारक रहे। डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्यजी को प्रशिक्षण देने के उपरान्त न्यायकुमुदचन्द्र भाग - 1 के प्राक्कथन में उन्होंने अपना दर्द इस प्रकार व्यक्त किया जो कि आज भी मननीय है -

*''**अभी तक मेरे देखने सुनने में ऐसा एक भी पुराना दिगम्बर भण्डार या आधुनिक पुस्तकालय नहीं आया जिसमें बौद्ध, ब्राह्मण और श्वेताम्बर परम्परा का समग्र साहित्य संग्रहीत हो। मैंनें दिगम्बर परंपरा की एक भी ऐसी संस्था नहीं देखी या सुनी कि जिसमें समग्र दर्शनों का आमूल अध्ययन चिंतन होता हो या उसके प्रकाशित किये हुए बहुमूल्य प्राचीन ग्रन्थों का संस्करण या अनुवाद ऐसा कोई हो जिससे यह विदित हो कि उसके संपादकों या अनुवादकों ने उतनी विशालता व तटस्थता से इन मूल ग्रंथों के लेखकों की भांति नहीं तो उनके शतांश या सहस्रांश भी श्रम किया हो।** मेरा यह भी चिरकाल से मनोरथ रहा है कि हो सके उतनी त्वरा से दिगम्बर परंपरा की यह मनोवृत्ति बदल जानी चाहिये। इसके बिना वह न तो अपना ऐतिहासिक व साहित्यिक पुराना अनुपम स्थान संभाल सकेगी और न वर्तमान युग में सबके साथ बराबरी का स्थान पा सकेगी। यह भी मेरा विश्वास है कि अगर यह मनोवृत्ति बदल जाये तो उस मध्यकालीन थोड़े, पर असाधारण महत्व के, ऐसे ग्रन्थ उसे विरासत लभ्य हैं जिनके बल पर और जिनकी भूमिका के ऊपर उत्तर कालीन और वर्तमान युगीन सारा मानसिक विकास इस वक्त भी बड़ी खूबी से समन्वित व संग्रहीत किया जा सकता है।''*[1]

इस प्रकार कई विचार हमारे समक्ष आते रहते हैं जो हमें चिन्तन को बाध्य करते हैं। आज समय बहुत बदला है। जैन शोध के क्षेत्र में काफी सुविधायें उपलब्ध हैं किन्तु अकाल है इनका उपभोग करने वालों का। तमाम छात्रवृत्तियों, आवास आदि की व्यवस्थाओं के बाद भी सूनी पड़ी लाइब्रेरियों को जब दानदातार या निर्माण करने वाले देखते हैं तो उनका मन भी खिन्न हो जाता है और कोई तत्काल लाभ न दिखने से उन्हें वह धन भी व्यर्थ जाता दिखता है। बात साफ है करोड़ों खर्च करके कारखाने खड़े कर लिये। Product बनाने के लिये कच्चा माल है ही नहीं, यदि मिला भी Product को खपाने के लिये कोई Market नहीं। ये स्थितियाँ विसंगति पैदा करती हैं। यही कारण है कि शोध संस्थानों में धनाभाव भी रहता है।

प्राच्य विद्याओं के क्षेत्र में जहाँ कहीं इक्के-दुक्के लोग समर्पित भाव से लगे भी हैं तो उनकी वैचारिक कठोरता, साम्प्रदायिक तथा एकांगी चिन्तन शोध कार्य को शुद्धता से नहीं होने देती। जिस कारण जैन दार्शनिक चिन्तन के विकास पर विराम लग जाता है। प्रख्यात मनीषी प्रो. दयानन्दजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भार्गव जैन दर्शन को एक गतिशील दर्शन मानते हैं। वे लिखते हैं कि -

''मैं मानता हूँ कि जैन दर्शन में एक गतिशील दर्शन होने के बीज उपस्थित हैं। उनमें सत्य के नित्य नवीन स्वरूप को उद्घाटित करने का पूर्ण अवकाश है। उसे मानवीय तथा तार्किक धरातल पर प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। पौराणिक अतिलौकिकता उसका अनिवार्य अंग नहीं है। आगम प्रामाण्यवादी होने पर भी जैन दर्शन सत्य को आगम से बंधा हुआ नहीं मानता। महावीर जैन परम्परा में उत्पन्न हुए किन्तु उन्होंने सत्य को किसी गुरु या आगम से नहीं, अपने अनुभव से जाना। यह व्यक्ति स्वातंत्र्य के ज्वलंत प्रमाण है।''[2]

दर्शन इत्यादि विषयों की अपेक्षा विज्ञान आदि विषयों में आज की प्रतिभायें ज्यादा भाग ले रही हैं। फलस्वरूप प्राच्य विद्या के क्षेत्र में तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी की प्रतिभा वाले विद्यार्थियों की भरमार होने से भी यह क्षेत्र पिछड़ रहा है। प्रतिभायें इन विषयों के शोध इत्यादि की तरफ क्यों नहीं आती? इसका एक कारण यह माना जाता है कि इन कार्यों की कोई Commercial Value नहीं है और दूसरा कारण वह है जो प्रो. दयानन्द भार्गव लिख रहे हैं -

''सत्य के नित्य नूतन पक्ष उद्घाटित करने में तत्पर व्यक्ति तथा समाज को जागरूक तथा सृजनशील रहना होता है किन्तु पुराने सत्य को दोहराने मात्र में न जागरूकता अपेक्षित है न सृजनशीलता। दर्शन की स्थिति आज पुराने सत्य को दुहराने मात्र की है। इसलिये दर्शन देश की प्रतिभाओं को आकृष्ट नहीं कर पा रहा। यह स्थिति दर्शन सहित सभी प्राच्य विद्याओं की है। जो सत्य को जितनी ही नयी से नयी अपेक्षाओं से देख सकेगा, वह सत्य की उतनी ही अनेकान्तात्मकता को उजागर कर पायेगा। इसके लिये सतत बौद्धिक गतिशीलता आवश्यक है।''[3]

जैन शोध के क्षेत्र में कार्य तो बहुत हो रहे हैं किन्तु विशाल समुद्र में वे बूँद सदृश हैं। जैन धर्म में तत्त्वार्थसूत्र सर्वाधिक प्रसिद्ध व पठनीय है। किन्तु उसी ग्रन्थ की टीकाओं पर उत्कृष्ट शोध कार्य आज तक नहीं हुआ। इस बात को आज के युग के महान् मनीषी पद्मभूषण पं. बलदेव उपाध्याय खुद कह रहे हैं। वे लिखते हैं -

''अभी तक किसी भी जैन विद्वान् ने इन समग्र टीकाओं (तत्वार्थसूत्र की) का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से करने का उद्योग ही नहीं किया है। पंडित सुखलालजी का कार्य प्रशंसनीय होने पर भी उतना गम्भीर नहीं है। आशा है पाश्चात्य पद्धति से परिचित कोई आलोचक इन समस्याओं के निर्धारण को अपने अनुशीलन का विषय बनायेगा।''[4]

इस प्रकार के विचारों को पढ़ने से स्वमूल्यांकन का अवसर मिलता है। डॉ अनुपमजी की सम्पादकीय भी वास्तव में हम सभी को इसी स्वमूल्यांकन को विवश कर रही है।

सन्दर्भ -

1. माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रंथालय, बम्बई, 1938
2. आचार्य श्री देशभूषण अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 39
3. 'आधुनिक सन्दर्भ में जैन दर्शन के पुनर्मूल्यांकन की दिशायें' आचार्य श्री देशभूषण अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 38
4. पुरोवाक्, पृ. XII, XIII, तत्त्वार्थसूत्र, अनुवाद सहित, संपादक - अनुवादक - डॉ. सुदीप जैन, प्रकाशक - कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, 1997

6.4.2001

■ कुमार अनेकान्त जैन
शोध अध्येता,
जैन विश्व भारती संस्थान (विश्वविद्यालय),
लाडनूँ - 341306 (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्या संस्थानों के टूटते बिखरते कंगूरे

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के सचिव डॉ. अनुपम जैन को हम धन्यवाद देना चाहेंगे कि उन्होंने शोध संस्थानों की यथास्थिति को परख और उस पर बहस छेड़ने का संचरण किया। उन्होंने बडे गंभीर और सटीक मुद्दे उठाये हैं। वे युवा किन्तु अनुभवी हैं। मुझे भी उन्होंने चन्द शब्द लिखने का आग्रह किया। तदनुसार जो भी विचार आये, उन्हें आपके समक्ष संक्षेप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। ये विचार मात्र सांकेतिक बिन्दु हैं, इन पर खुले मन से चिन्तन - मन्थन होना चाहिये। संभव है, इनसे कोई नई ज्योति समाज को मिल सके और शोध संस्थानों की यथार्थ रूपता को हम पहचान सकें।

जैन समाज के सामाजिक इतिहास का पर्यालोचन करने पर यह तथ्य प्रच्छन्न नहीं रहता कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व खडी हुई संस्थानों के स्थापन और संचालन में जो आत्म समर्पण की भावना थी वह स्वातंत्र्योत्तर काल में दिवंगत सी हो गई है। परमपूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी का नाम हम सब लोगों के लिये सुपरिचित है, जिन्होंने स्याद्वाद महाविद्यालय - वाराणसी, वर्णी विद्यालय - मोराजी जैसे शिक्षण संस्थान स्थापित किये और समाज में आज दिखाई देने वाले अधिकांश विद्वान् इन संस्थाओं के माध्यम से ही सामाजिक क्षेत्र में आये। इसी तरह पं. गोपालदासजी वरैया, पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार, पं. सुखलालजी संघवी आदि जैसे विद्वान् भी स्मरणीय हैं, जिनकी पुनीत साधना से वीर सेवा मंदिर, पार्श्वनाथ विद्याश्रम जैसे अनेक शिक्षण संस्थान स्थापित हुए और जैन समाज को शिक्षा क्षेत्र में नये आयाम दिये।

पिछले दशकों में एक यक्ष प्रश्न लोगों के मन में कौंध रहा है - जैन पांडित्य की अक्षुण्णता क्यों और कैसे? इस प्रश्न की अन्तर्तम वेदना ने सारे समाज को झकझोर दिया है। एक ओर जहाँ स्याद्वाद महाविद्यालय और मोराजी जैसे शिक्षण संस्थान मृतक प्रायः हो गये हैं, वहीं पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वर्णी शोध संस्थान जैसी संस्थाएँ अपने संकल्प को पूरा करने में असमर्थ हो रही हैं। पण्डित परम्परा की एक जो लम्बी श्रृंखला बन चुकी थी, आज वह ध्वस्त सी दिखाई दे रही है, एक-एक कर इस लम्बी श्रृंखला से प्राचीन परंपरा के विद्वान् काल-कलवित होते जा रहे हैं, जो उसी में से बचे-खुचे विद्वान हैं वे अपनी अंतिम सांस ले रहे हैं।

जहाँ पंडित शब्द की सार्थकता का प्रश्न है, वह आज भी तहस-नहस हो रही है। गृहस्थ विद्वान् पं. आशाधर के नाम के साथ जो 'पण्डित' शब्द शरीर के साथ त्वचा के समान जुड़ गया है, वह निरर्थक नहीं था। आशाधरजी भले ही मुनि न रहे हों लेकिन उनकी समूची जीवन पद्धति किसी मुनि से कम नहीं थी। इस प्रसंग में कवि जोइन्दु द्वारा लिखित परमात्म प्रकाश का निम्न दोहा याद आ रहा है, जिसमें उन्होंने का है कि - 'पण्डित वही है जो परमात्मा को शरीर से पृथक मानकर केवलज्ञानी हो जाता है।' -

देहविभिण्णउ जाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परमसमाहि - परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ॥[1]

पण्डित की यह परिभाषा आज अपने अस्तित्व को तलाश कर रही है। लगता है उसका संबंध चारित्र से कट गया है। पण्डित की उस परिभाषा को भी हम नहीं भुला पाएँगे जहाँ किसी मजाकिया संस्कृत विद्वान् ने यह कह दिया - **पण्डितः पण्डितं दृष्टवा श्वानवत् गुर्गायते।** यह उस समय भले ही मजाक भरा कथन होगा, पर हम इसे भी अस्वीकार नहीं कर सकते। इस कथन के पीछे उस विद्वान् की आँखों के सामने नाचती हुई विद्वत् परम्परा के चरित्र की पृष्ठभूमि रही होगी।

इन सन्दर्भों में जब हम अपने शोध संस्थानों पर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि उनके भव्य प्रासादों के आकर्षक कंगूरे टूटकर, बिखरकर इधर-उधर गिर रहे हैं। उनकी पृष्ठभूमि में पले-पुसे उद्देश्यों की धज्जियाँ उड़ रही हैं और सुगन्धित बयार में रूखा-सूखापन आ रहा है। संस्थानों की ऐसी स्थिति आ जाने पर स्वाभवतः यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी इस दुर्दशा के पीछे उत्तरदायी कौन है?

इस प्रश्न का उत्तर विस्तार से देना तो फिलहाल संभव नहीं है, पर उसके कतिपय बिन्दुओं की ओर संकेत मात्र किया जा सकता है। **साधारणत: यह देखा गया है कि संस्थानों में कुछ प्रबन्धक लोग कुण्डली मारकर बैठ जाते हैं, उन्हें संस्थान की अपेक्षा स्वयं के विकास का ध्यान अधिक रहता है। इससे उनकी अहं तुष्टि भी होती रहती है और साथ ही संयोगवश संस्थान का विकास भी उसकी तृप्ति के साथ जुडा रहता है। इससे चमचेबाजी भी पनपने लगती है और यदि उसके साथ स्वार्थ अधिक जुड़ गया तो संस्थान की कीमत पर धड़ाधड़ अनपेक्षित नियुक्तियाँ होने लगती हैं, जो गुणवत्ता से दूर रहकर संस्थान पर बोझ सी बन जाती है। एक प्रतिष्ठित शोध संस्थान जो कई दशकों तक बहुश्रुत रहा, आज इसी कारण बिखर रहा है।**

इस प्रसंग को हम यहीं छोड़कर उन कतिपय बिन्दुओं का उल्लेख करना चाहेंगे जिनके कारण आज शोध संस्थानों की प्रगति अवरूद्ध हो गई है -

1. निदेशक और प्रबन्ध समिति के बीच तालमेल न हो पाना।
2. प्रबन्ध समिति का विश्वास निदेशक पर न होना।
3. निदेशक के हर कार्य में अड़ंगें पैदा करना और उसे स्वतंत्रता न देना।
4. निदेशक द्वारा उठाये गये कदमों की प्रशंसा न कर एकपक्षीय आलोचना करना।
5. निदेशक और पूर्व निदेशक के बीच सामंजस्य न होना।
6. पूर्व निदेशक द्वारा निदेशक के कार्यों की तीखी, एकपक्षीय आलोचना और उसके कार्यों को तोडमरोड़ कर प्रबन्ध समिति के समक्ष प्रस्तुत करना, ताकि निदेशक संस्थान की इतनी प्रगति न कर सके कि पूर्व निदेशक द्वारा की गई प्रगति पर पानी फिर जाये।
7. जातीयता और साम्प्रदायिकता की आड़ में पारस्परिक सहयोग न देना।
8. पूर्व निदेशक का आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप करना या गतिरोध पैदा करना, इस उद्देश्य से कि कहीं उसकी गलतियाँ सामने न आ जायें।
9. समाज और संस्थान के बीच समन्वय स्थापित न होना।
10. पारिवारिक सम्पत्ति के रूप में खड़े संस्थान को सामाजिकता का जामा पहनाकर और समाज से पैसा एकत्रित कर उसी सीमित बनाये रखना।
11. सामन्तवादी प्रवृत्ति से संस्थान पर अंकुश रखना।
12. गुणवत्ता का ध्यान रखे बिना अनपेक्षित नियुक्तियाँ करना और संस्थान पर आर्थिक बोझ डाल देना।
13. प्राकृत और जैन संस्कृति के पाठ्यक्रम के संचालन से दूर रहना।

वर्तमान में जैन समाज में शोध संस्थानों के नाम पर लगभग पचास संस्थानों के नाम हमारे सामने हैं जिनमें पाँच-सात संस्थानों को छोड़कर शेष संस्थान जेबी संस्थान के रूप में सिमटकर रह गये हैं। कुछ विद्वानों की जेब में हैं, कुछ पर मुनियों का नाम जुड़ा है, कुछ श्रेष्ठियों की शोभा बढा रहे हैं और कतिपय संस्थान ऐसे हैं जिन पर समाज का एक वर्ग विशेष आधिपत्य जमाये हुए है और कुछ पारिवारिक सम्पत्ति के रूप में अवस्थित हैं।

जो संस्थान आज गतिमान हैं, वे हैं -

1. जैन विश्व भारती (संस्थान), लाड़नूँ
2. पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी
3. लालभाई दलपतभाई प्राच्य शोध संस्थान, अहमदाबाद
4. भोगीलाल लहेरचन्द प्राच्य शोध संस्थान, दिल्ली
5. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
6. अहिंसा शोधपीठ, वैशाली
7. कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली
8. राष्ट्रीय प्राकृत शोध संस्थान, श्रवणबेलगोला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ विद्यापीठ कदाचित्, सर्वाधिक पुराना और अच्छा संस्थान है जो आज अर्थाभाव से गुजर रहा है। चूंकि मैं अभी यहाँ कार्यरत हूँ, इसके विषय में कुछ कहना उपयुक्त नहीं होगा। जैन विश्व भारती संस्थान डीम्ड युनिवर्सिटी है, मान्य विश्वविद्यालय के रूप में उसने निश्चित ही अपना अच्छा स्थान बना लिया है, यह हमारे गौरव का विषय है, पर उसका वह विकास नहीं हो पा रहा है, जो होना चाहिये था। एल.डी और बी.एल. संस्थानों में कोई अर्थाभाव नहीं है, पर अधिक गतिमान भी नहीं है। वैशाली संस्थान सरकारी तंत्र से जुड़ा हुआ है और वह रेंगता - रेंगता घिसट रहा है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ - इन्दौर, कुन्दकुन्द भारती - दिल्ली और प्राकृत शोध संस्थान - श्रवणबेलगोला अपने संसाधनों की सीमा में रहकर ठीक काम कर रहे हैं। यदि उन्हें अवसर मिल सके तो ये संस्थान अच्छा काम कर सकते हैं। पार्श्वनाथ विद्यापीठ - इन्दौर जैसे अन्य शोध संस्थानों पर भी हमारी दृष्टि जा रही है जहाँ संभावनाएँ खोजी जा सकती हैं। श्री बी.एल. जैन, श्री लालभाई दलपतभाई, श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, श्री नेमिनाथ जैन जैसे धीर और भी सम्पन्न व्यक्ति यदि सचेष्ट हो जायें तो संस्थान प्रगतिपथ पर बढ़ सकते हैं।

इन सभी संस्थानों की आंतरिक और बाह्य स्थिति पर निष्पक्ष मंथन होना आवश्यक है। यह मंथन मात्र आलोचनात्मक न हो। उसका सकारात्मक दृष्टिकोण निश्चय ही हमारा सम्बल बनेगा। किसी भी संस्थान के विषय में सही आलोचक बनकर कुछ कहना विरोध का झंझावात खड़ा करना है। हर व्यक्ति और संस्थान अपने विरोध में उठे स्वर का विरोध करेगा और उसका समाधान प्रस्तुत करेगा। अनेकान्तवाद की दृष्टि से हम उसकी उपेक्षा भी नहीं कर सकते। यहाँ हमारा यह मन्तव्य भी नहीं है कि संस्थानों की कमियाँ ही दिखलाई जायें। जो संस्थान जितना भी काम कर रहे हैं, प्रशंसनीय है। पर यह भी आवश्यक है कि संस्थान अब आत्म मंथन करें, अन्तरावलोकन करें और जैन साहित्य और संस्कृति के प्रचार - प्रसार में अपना योगदान दें।

आज जैन साहित्य और संस्कृति की मूल परम्परा से सम्बद्ध विद्वान् मिलना कठिन होता जा रहा है। ऐसे विद्वान् जो संस्कृत, प्राकृत, दर्शन और इतिहास, पुरातत्त्व में निष्णात हैं तथा अंग्रेजी में भी अच्छी गति हो उनकी निरन्तर कमी होते रहना हमारी चिन्ता का विषय होना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में अब यह आवश्यक है कि हम वस्तुनिष्ठ होकर विद्वानों को तैयार करने का अभियान प्रारम्भ कर दें और उन सभी गतिरोधों को दूर कर पूर्वाग्रहों से मुक्त हो जायें।

संस्थानों के संचालन में विद्वान् और श्रेष्ठी के साथ ही साधु सम्प्रदाय और समाज का भी समन्वित सहयोग होना आवश्यक है। जातीय और सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर खुली मानसिकता के साथ जब तक शोध संस्थानों का विकास नहीं किया जायेगा और प्राच्य भाषाओं के निष्णात् विद्वानों को तैयार नहीं किया जायेगा तब तक हम अपनी संस्कृति को सुरक्षित नहीं रख सकेंगे।

आज मन्दिरों और पंचकल्याणकों की बाढ़ सी आ रही है। साधु सम्प्रदाय में यह प्रतिस्पर्धा लगी हुई है कि कौन कितने मन्दिर खड़ा कर सकता है? समाज का पैसा पानी की धार सा बह रहा है, उसके प्रदर्शन से नई - नई आपत्तियाँ भी आ रही हैं। काश! शैक्षणिक जगत को समृद्ध करने का बीडा यह साधु सम्प्रदाय उठा लेता। समाज में क्रांति लाने के लिये शिक्षा जगत में क्रांति लाना नितान्त आवश्यक है।

इस प्रकार नूतन मन्दिर निर्माण, पंचकल्याणक, प्रकाशन, व्यवस्थापन, सेवा संयोजन, संस्कार - जागरण, नैतिकता, पुरस्कार संयोजन आदि जैसे विषयों पर बहस होनी चाहिये। समाज में सचेतनता और जीवंतता बनी रहे, इसके लिये यह सब आवश्यक है।

सन्दर्भ -

1. परमात्म प्रकाश, दोहा - 14.

4.3.2001

■ **डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'**
निदेशक - पार्श्वनाथ विद्यापीठ,
आई.टी.आई. रोड, **वाराणसी** (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वरित नहीं दूरगामी सोच चाहिये

जैन विद्या संगोष्ठी (3-5 मार्च 2001) के एक सत्र **'जैन शोध संस्थानों की समस्यायें एवं समाधान'** की अध्यक्षता के मध्य मुझे इस सन्दर्भ में अनेक वक्ताओं के विचार सुनने एवं डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' तथा डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर के लिखित आलेख पढ़ने का अवसर मिला। यह संगोष्ठी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में हो रही थी एवं मुझे यह लिखते हुए बिल्कुल संकोच नहीं है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ एक विकासमान, प्रतिष्ठित शोध संस्थान है। देश - काल - परिस्थिति की अनुकूलतायें/प्रतिकूलतायें तो सर्वत्र सदैव रहती हैं, ऐसे में भी यदि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने अपेक्षित प्रशंसनीय प्रगति की है तो उसके माडल को ही क्यों न अपनाया जाये। श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल ने इस सत्र में एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कही - **'शोध संस्थानों के प्रबन्धकों को स्वयं प्रबन्धक न मानते हुए संस्थान के एक कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना चाहिये तभी संस्थान प्रगति कर सकता है। इसकी मिसाल डॉ. अनुपम जैन एवं उनके द्वारा संचालित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ है।'** आदरणीय काकासाहब श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल का विद्वत्प्रेम एवं वात्सल्य तो मैं गत 12 वर्षों से देख रहा हूँ। उनके दृष्टिकोण एवं रीति - नीति की जितनी प्रशंसा की जाये, कम है, किन्तु अजित बाबू की बात सुनकर मुझे अब लग गया है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का भविष्य उज्जवल है।

मैंने बहुत ज्यादा संस्थान तो नहीं देखे हैं किन्तु कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की प्रगति एवं समृद्धि के पीछे के कारणों को अपने नजरिये से सूचीबद्ध कर रहा हूँ। बस, इन कारकों की रक्षा करें एवं पूर्ववत सफल नीति को अपनायें तो समस्यायें आयेगी ही नहीं। फिर समाधान की क्या जरूरत? यह बात सभी शोध संस्थानों पर लागू होती है।

1. ज्ञानपीठ का शीर्ष नेतृत्व (श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल) एवं कार्यकारी प्रमुख (डॉ. अनुपम जैन) में पूर्ण सामंजस्य रहा है। दोनों की चिन्तन की दिशा, लक्ष्य एवं कार्ययोजना एक है।
2. दोनों में पूर्ण विश्वास है। किसी स्तर पर शिकायत, असंतोष के मुझे अब तक दर्शन नहीं हुए। C.E.O. (चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर) एवं शीर्ष नेतृत्व में परस्पर विश्वास एवं कार्य के प्रति संतोष जरूरी है। शीर्ष नेतृत्व को C.E.O. चुनने का पूर्ण अधिकार है किन्तु चुनने के बाद असंतुष्ट रहकर कार्य करने पर संस्थान प्रगति नहीं कर सकता। उसका विकल्प ढूंढने का प्रयास घातक होता है। यह घातक प्रयास यहाँ अब तक नहीं हुआ।
3. ज्ञानपीठ में निर्धारित वित्तीय सीमाओं में कार्य करने की पूर्ण स्वायत्तता है।
4. पर्याप्त सोच विचार कर ही योजना हस्तगत की जाती है एवं यदि कोई कार्य हाथ में ले लिया तो उसको पूर्ण करने की जी - जान से कोशिश की जाती है।
5. समागत विद्वानों को यहाँ पूर्ण सम्मान एवं आदर दिया जाता है। उन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन एवं प्रेरणा दी जाती है। इससे संस्था की चतुर्दिक अच्छी छवि निर्मित होती है।
6. यहाँ पर सभी योजनायें तात्कालिक लाभ की दृष्टि से नहीं अपितु दीर्घकालिक हितों को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं जैसे पुस्तकालय का विकास, शोध पत्रिका का प्रकाशन, जैन साहित्य सूचीकरण परियोजना आदि। इनको पूर्णता एवं यश प्राप्त करने में समय लगा है।
7. यहाँ के कार्यकर्ताओं में पूर्ण टीम भावना है। सभी कर्मचारी नेतृत्व के साथ समर्पित ढंग से काम करते हैं। पंथ एवं पक्ष व्यामोह से मुक्त हैं।
8. यदि यही रीति - नीति सभी जैन शोध संस्थान अपनायें तो समस्यायें आयेगी ही नहीं। कोइ कम धन व्यय करे या अधिक, फर्क नहीं पड़ता, जरूरत है उचित तरीके से खर्च की।

25.3.2001

■ **डॉ. सुरेशचन्द्र अग्रवाल**
अध्यक्ष - विज्ञान संकाय,
चौधरी चरणसिंह वि.वि.,
मेरठ (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन शोध संस्थानों की समस्यायें एवं समाधान सम्पादकीय एवं सत्र - विचारोत्तेजक

*कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा आयोजित जैन विद्या संगोष्ठी (3-5 मार्च 2001) में **'जैन शोध संस्थानों की समस्यायें एवं समाधान'** शीर्षक सत्र अत्यन्त विचारोत्तेजक एवं सार्थक रहा। अर्हत् वचन के **13** (1), जनवरी-2001 का सम्पादकीय मन को झकझोरने वाला है। इसी क्रम में मैं अपने विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।*

सारे भारतवर्ष में सैकड़ों स्थानों पर फैली हमारी प्राचीन पाण्डुलिपियाँ/दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों की दशा अत्यंत शोचनीय एवं दयनीय स्थिति में है। कुछ स्थान/संस्थान आवागमन में असुविधा, प्रचार-प्रसार, परस्पर वात्सल्य भाव एवं अर्थाभाव के कारण अभी भी प्रकाश में नहीं आ पाये हैं जिनका तथा उनमें संचय की गई बहुमूल्य/अमूल्य जिनागम/पोथियों की कोई खोज खबर नहीं है। कुछ संस्थान हमारे ही धर्मावलम्बियों के अनधिकृत अतिक्रमण एवं कब्जे से ग्रसित होने के कारण समस्याओं से जूझ रहे हैं। कुछ तीर्थों पर प्राचीन पाण्डुलिपियाँ गर्भग्रहों में दबी या यत्र-तत्र बोरों में बन्द एवं बिखरी पड़ी हैं, जिनकी खोज क्षेत्रीय आधार पर की जानी चाहिये। कुछ संस्थानों पर ऐसे व्यक्ति कुण्डली जमाये बैठे हैं जो ताला खोलने में दुखी होते हैं या द्वार से शोधार्थी को अपशब्दों का प्रयोग करके भगा देते हैं। कई संस्थानों पर धनराशि की कमी तो नहीं है पर वे संस्थान किसी की जेब की शोभा बने हुए हैं। संचित धनराशि संस्थानों के जीर्णोद्धार में न लगाकर मनमाने ढंग से खर्च की जा रही है।

2600 वीं भगवान महावीर जन्मजयंती के लिये सरकार ने 100 करोड़ रुपये निर्धारित किये हैं लेकिन जिनवाणी के संरक्षण, संवर्द्धन की ओर हमारा ध्यान अभी भी नहीं है। इस वर्षगांठ पर अगर हमारी गांठ खुल गई तो जैन समाज की आजादी की वर्षगांठ मान लेने में हमें प्रसन्नता होगी। अभी भी हमारे वक्ता भाषणों के रिहर्सल कर रहे हैं, लेखक कलम पैनी कर रहे हैं, भावी योजनाओं पर नई शब्दावली के गिलाफ चढ़ रहे हैं, दिलकश नारे तैयार किये जा रहे हैं, लेकिन समाज की नींद तो अभी टूटी ही नहीं है। हमें निश्चयात्मक रूप से जान लेना चाहिये कि हमारी दुर्बलता की डोरियाँ हमारे संकल्प की दुर्बलता के ठीक अनुपात में मजबूत होती है। हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम अकर्मण्य, हतभाग, अज्ञानी, दुराभिमानी बने बैठे हैं और यह रोग हमारी आत्माओं में घुस गया है और हम स्वयं को रोगी मानने के स्थान पर गले में आला डाले चिकित्सक बन घूम रहे हैं। जिन राजनैतिक और सामाजिक नेताओं की ऊंगलियाँ हमारी नब्जें टटोल रही हैं, उनका उपचार कौन करेगा, हमें इसकी चिंता खाये जा रही है। विद्वत् परिषद दो फांक हो गई। शास्त्री परिषद में भी वितंडावाद फैलाकर अलगाव की स्थिति लाई जा रही है। वस्तुस्थिति यह है कि एक अधिक रोगी एक न्यून रोगी का उपचार करने में लगा हुआ है और मजा यह है कि अपने-अपने रोग से बेखबर दोनों एक दूसरे को ही बीमार मान रहे हैं। विचित्र भले लगे, किन्तु सच्ची बात यही है।

हर संस्थान/शोध संस्थान की अपनी-अपनी शिकायतें हैं, जैसे - हमारे संस्थान में कोई अच्छा व्यवस्थापक नहीं है, आता भी है तो टिकता नहीं है। जो व्यवस्थापक टिके हैं, वे इसे राजनीति का अड्डा बनाये हुए हैं। संस्थानों के मालिक शोधाधिकारी से घर के काम कराना चाहते हैं जैसे विद्वान् सेठजी का नौकर हो। शोध संस्थानों/संस्थानों में चारों ओर धोखा ही धोखा है। आपको इन शब्दों को पढ़कर आश्चर्य होगा क्योंकि कुछ ऐसे संस्थान भी हैं जिनके अड़ोस-पड़ोस में रहने वालों तक को पता नहीं कि यहाँ कोई संस्थान भी है। कुछ संस्थान पारिवारिक संपत्ति के रूप में हैं जिन्हें सामाजिक जामा पहनाकर मोटी-मोटी रकमें चन्दे के रूप में देश/विदेशों से एकत्रित की जा रही हैं। धोखा न दो यह तो जरूरी है ही, मगर उससे ज्यादा जरूरी है कि धोखा न खाओ। गलत और पराये नारों से, गलत और पराये नेतृत्व से, गलत और पराये चेहरों से, गलत और पराये सपनों से, गलत और पराये आदर्शों से हमें धोखा देने के लिये एक पूरा का पूरा षड्यंत्र-चक्र गतिमान है। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम पंडित, विद्वान्, साधु, श्रेष्ठी संस्थानों के नाम से सामाजिक एवं नैतिक अपराध कर रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सार्थक प्रश्न यह है कि संस्थानों की वर्तमान दुर्दशा के लिये जिम्मेदार कौन है? संस्थानों की रक्षा के लिये जो संपत्तियाँ दण्ड के रूप में व्यवस्थापकों को सौंपी गई थी उसी के निशान संस्थानों की पीठ पर क्यों उभर आये हैं। जिनवाणी की रक्षा-सुरक्षा का अंजन तुम्हारी आंखों में आंजा गया था, तुम उसे कहाँ धो आये? तुम्हारे पास यशस्वी बनने का संकल्प था, तुम लंपटों की संगत में कैसे विचरने लगे?

बोलो, मेरी समाज के नायक, ये प्रश्न उठ नहीं रहे हैं, ये मनीषियों को मथे दे रहे हैं। अब आमूल चूल और निरन्तर .....। चूक कहाँ हुई है, खोजो, मेरे नायक खोजो। **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर ने गत 13 वर्षों में एक सुव्यवस्थित रीति-नीति पर चलते हुए ठोस आधार बनाया है। योजनाबद्ध ढंग से लम्बे लक्ष्य को सामने रखकर काम करने की अपनी शैली के कारण कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ आज सम्पूर्ण दि. जैन समाज की आशाओं का केन्द्र बिन्दु बन गयी है। कोई भी कठिन काम हो लोग आशा भरी नजरों से ज्ञानपीठ की ओर ही देखते हैं। इसकी कार्यपद्धति एक आदर्श है किन्तु आज इस पहल के पीछे कोई रहस्य तो नहीं है। डॉ. अनुपम जैन को इस विशेष सत्र के आयोजन की आवश्यकता क्यों पड़ी, यह विचारणीय है। गलतियों को सुधारने का संकल्प भगवान महावीर के 2600 वीं जन्मजयंती वर्ष में तो एक नया अध्याय होगा।** अभी कुछ नहीं बिगड़ा है क्योंकि ज्ञान की, विरासत की, जिनवाणी की ज्योति/मशाल तुमने भले ही गंवा दी हो परन्तु नई मशाल जलाने के लिये अभी समाज में चिराग हैं। माँ जिनवाणी के पृष्ठ अस्तव्यस्त हो रहे हैं, उनकी फड़फड़ाहट की आवाजें, कराहटें तुम तक क्यों नहीं पहुँचती? क्या हम जैन कहलाने के योग्य बचे हैं?

जो लोग जैन संस्कृति-धर्म दर्शन के क्षेत्र में अपनी धनराशि का उपयोग करने की क्षमता रखते हैं, उन्हें ऐसे संस्थानों के नाम पते भी मालूम नहीं हैं, जिन्हें दान दिया जाना चाहिये। **तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की सम्पर्क ने इस अभाव की पूर्ति की है।** विद्वानों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि एक-एक संस्थान को चुनकर अपना नियमित मार्गदर्शन/दिशा निर्देश, संरक्षण उपलब्ध करायें जिससे टूटते कगारों से संस्थानों को बचाया जा सके। **चलती गाड़ी में बैठकर बिना अधिक श्रम के यश पाने की लालसा, पूर्ववर्तियों के त्याग एवं श्रम को ठुकराना विद्वानों को शोभास्पद एवं हितप्रद नहीं है।** पूर्ववर्तियों के श्रम का मूल्यांकन करते हुए, उनको यथेष्ट सम्मान देते हुए, लगाये गये पौधे को अपने श्रम से सींचना विद्वानों का कर्तव्य है। वर्तमान में यही सच्चा उत्तरदायित्व है। दुर्बलताओं को स्वीकारने के बाद का कदम है उन्हें संवारना, स्वीकृति के बाद परिष्कृति। एक निष्पक्ष विश्लेषण के पश्चात् परिष्कृति और निष्पत्ति, जीवन और धर्म का यही महामंत्र है।

23.3.2001

■ **डॉ. अभयप्रकाश जैन**
एन - 14, चेतकपुरी, **ग्वालियर** - 474 009

प्राकृत प्रकाश की प्रस्तावना

प्राकृत और संस्कृत की प्राचीनता के विषय में अलग-अलग तरह की व्याख्याएँ विभिन्न समीक्षक अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार करते आये हैं। इस विवाद अथवा तर्क-वितर्क से ऊपर उठकर इतना कहना पर्याप्त होगा कि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसीलिये संस्कृत-नायकों में प्राकृत को स्त्री-पात्रों की भाषा के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसका मूल कारण इस भाषा की मधुरिमा, इसके शब्दों की मोहकता और हृदय के आकर्षण की स्वाभाविक शक्ति है। इसका साहित्य लालित्यपूर्ण और जनसामान्य को प्रभावित करने की महती शक्ति से सम्पन्न है।

■ **डॉ. मण्डन मिश्र**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत – अभिमत

अर्हत् वचन बहुत पसन्द आई। यह पत्रिका **Jain Antiquary** या **जैन सिद्धान्त भास्कर** जैसी है और पढ़ने में बहुत प्रसन्नता होती है। मुझे देखकर प्रसन्नता हुई कि ऐसी पत्रिका भी यहाँ छप रही है।

20.01.01

Y.K. Jain
51, IEHCS LAYOUT, 5yh Block,
7th main Vidyaranyapura, **Bangalore** - 560 097

Received with thanks a copy of your esteemed journal 'Arhat Vacana' Vol. 13. No. - 1. I very much appreciate the contents of English Section as it is very informative. The article entitled ***'Solar System in Jainism and Modern Astronomy'*** *by the learned author Dr. Rajmal Jain attracts my attention. While comparing Jaina Astronomy with modern astronomy, the author has intermixed his layman's view about Jaina astronomy with his scholarly understanding of modern astronomy. Had you refereed this paper to me. He must have gone through my work - Jaina Astronomy' and would have overhaulled the contents of his research paper as a whole.*

13.02.01

■ **Dr. S.S. Lishk**
Patiala

अर्हत् वचन के जनवरी 2001 में श्री राजमलजी जैन, अहमदाबाद द्वारा लिखित विद्वत्तापूर्ण लेख **The Solar System in Jainism and Modern Astronomy** पढ़ा। जैन ज्योतिष शास्त्र में वर्णित ग्रहों की स्थिति दूरी व आधुनिक एस्ट्रोनामी का तुलनात्मक वर्णन पढ़ा। कई वर्षों से यह अंतर जानने की अभिलाषा थी। जैन विज्ञान को ऐसे आधुनिक विज्ञान के वैज्ञानिकों द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है। महत्वपूर्ण लेख के लिये धन्यवाद, साधुवाद।

15.2.01

■ **इंजी. किरणकुमार जैन,** अधीक्षण यंत्री - सारणी
क्वा. नं. बी - 7, पोस्ट **सारणी** जिला बैतूल (म.प्र.)

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ निश्चय ही दिगम्बर समाज द्वारा संचालित शोध संस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अर्हत् वचन के जनवरी - मार्च 2001 अंक के सम्पादकीय में आपके विचार भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। निश्चय ही अपनी अधिकतर शोध संस्थानों की स्थिति देखकर हमें दु:ख ही होता है।

इसी अंक में प्रकाशित **'Jainism Abroad'** से हमें भारत के बाहर जैनधर्मावलम्बियों की वर्तमान स्थिति के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त हुई। डॉ. भुवनेन्द्रकुमार जैन, कनाडा के लेख से प्राप्त जानकारी का हम भारत में उपयोग कर सकते हैं। डॉ, राजमल जैन ने जैन तथा आधुनिक खगोल विज्ञान की बिना किसी पक्षपात के अनेकान्त दृष्टि से सम्यक् चर्चा की है। यही जैन चिन्तन की विशेषता होनी चाहिये। श्री रवीन्द्र मालवजी ने श्री वीरचन्द्रराघवजी गांधी की याद ताजा कर हमें आत्म सम्मान से भर दिया। श्री सुरेन्द्र बोथराजी का लेख जैनों की अल्पसंख्यक स्थिति के सन्दर्भ में बहुत ही सामयिक है और आशा है कि इससे हमारे जैन तथा जैनेतर बन्धुओं की काफी भ्रांतियाँ दूर हो गई होंगी। वास्तव में सभी संकलित लेख शोधपूर्ण हैं, सम्प्रति अर्हत् वचन की गरिमा के अनुरूप हैं।

20.02.01

■ **आदित्य जैन,** अध्यक्ष - दि. जैन महासमिति, लखनऊ संभाग
42/22, साकेत पल्ली, **लखनऊ** - 226 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनवरी - मार्च 2001 का अर्हत् वचन पढ़ा, बड़ी प्रसन्नता हुई। सम्पादकीय का शीर्षक **'जैन शोध संस्थानों की समस्यायें और उनका समाधान'** पढ़ा। आपने वस्तुस्थिति का वास्तविक चित्रण किया है। इसके लिये आपको धन्यवाद। आपने सात कालमों का उल्लेख करके उनके निदान लिखे, वास्तव में समस्त शोध संस्थानों को इन बातों पर ध्यान देना चाहिये तभी वे विकास की धारा में बहेंगे और जैन साहित्य के विपुल भण्डारों की रक्षा कर सकेंगे। आज के युग में युवा पीढ़ी का महत्वपूर्ण कर्तव्य यह है कि जो हमारे पूर्वज धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक धरोहरें छोड़ गये हैं उनका संरक्षण , संवर्द्धन, विकास आदि अपनी महत्वपूर्ण इच्छाओं का दमन करके भी करना चाहिये, क्योंकि वे ही हमारी पहचान हैं। आपके द्वारा लिखी गई सम्पादकीय के लिये साधुवाद।

1.03.01

■ **सुरेन्द्र जैन**
4, गणेश वर्णी वार्ड, **बकस्वाहा** (छतरपुर) म.प्र.

अर्हत् वचन का जन. - मार्च 2001 अंक मिला। शोध संस्थानों के सन्दर्भ में आपकी चिन्ता स्वाभाविक है। शोध संस्थान को चलाना सबके वश की बात नहीं है। कतिपय शोध संस्थानों को हमारे प्राच्य मनीषियों ने अपने रक्त से सींच कर पल्लवित/पुष्पित किया है। आज भी वैसे लोग मौजूद हैं, बस पहचानने की जरूरत है।

पत्रिका में सभी लेख शोध सामग्री से भरपूर हैं। पाण्डुलिपि परिचय का तो हर अंक में एक स्तम्भ ही देना चाहिये।

18.03.01

■ **डॉ. ऋषभचन्द्र जैन**
व्याख्याता - प्राकृत, जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, **वैशाली** - 344128

It is great pleasure and opportunity to be here, know everybody here & efforts being put by your organisation. Please keep it up. Best wishes.

20.01.01

■ **Rupesh Jain**
R - 838, New Rajendra Nagar, **New Delhi** - 110 060

ज्ञानपीठ के माध्यम से यह जो नवीन प्रयास किया गया है, वह सर्वप्रथम तो अनेकता में एकता का अनूठा कार्य है। क्योंकि किसी तरह का भेदभाव न रखते हुए सभी पत्र - पत्रिकाओं को एक मंच पर स्थापित किया जिससे शोध करने वालों को बहुत सुविधा प्राप्त हो गई है। साथ ही सारे देश के जैन साहित्य की जानकारी भी यहाँ उपलब्ध की गई है। ऐसे प्रयास अनुकरणीय हैं।

20.02.01

■ **एम. के. जैन**
मंत्री - उदासीन आश्रम, **द्रोणगिरि**

It was great pleasure to visit Kundakunda Gyanpitha, Indore. I am very much impressed for research work on ancient Jain scriptures which contain knowledge on history, geography, ayurvedic scriptures, jyotish, yantras & mantras, mathematics, science, practically on all subjects of knowledge. It requires great passion to do such type of research work. Shri Devkumarji, the president and Ajitkumarji Kasliwal take very great interest by mind, money and energy. I heartly congratulate them and wish them all success in these fields of Jain research work.

I wish, I can visit this institute again and again to do something in this field.

28.4.01

■ **Dipchand Gardi**
'Ushakiran' Building, M.L. Dahanakar Marg,
Mumbai - 400 026

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्वालियर में ऋषभ जयंती

'भारत का एकमात्र धर्म और एकमात्र पहचान उसकी मानवतावादी सांस्कृतिक विरासत है। जिस प्रकार अंग्रेजों की पहचान उनका वाणिज्य कौशल, फ्रांस की पहचान उसका राजनैतिक कौशल और अमेरिका की पहचान उसकी सुदृढ़ अर्थव्यवस्था है, उसी प्रकार भारत की पहचान उसकी आध्यात्मिकता और उसकी सांस्कृतिक समृद्धि है। तीर्थंकर ऋषभदेव भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक परम्परा के आदिपुरुष थे। दुर्भाग्य से आज भारतीय समाज, जिसकी आधारशिला त्याग और दान में थी, की दिशा परिवर्तित होकर भोगवादी संस्कृति की ओर मुड़ रही है। हम सबको इसे रोकना होगा अन्यथा हम अपनी सांस्कृतिक पहचान ही खो बैठेंगे।' यह विचार यहाँ भगवान ऋषभदेव जयंती के अवसर पर महावीर भवन परिसर में श्री 2500 वाँ भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव न्यास द्वारा आयोजित दो दिवसीय व्याख्यानमाला का समापन करते हुए डॉ. राधारमण दास, पूर्व कुलपति - जीवाजी विश्वविद्यालय ने मुख्य अतिथि के रूप में व्यक्त किये।

इस व्याख्यानमाला के प्रथम दिन, 17 मार्च 2001 को, इसका उद्घाटन करते हुए श्री पूरनसिंह पलैया, महापौर - ग्वालियर ने भगवान महावीर के 2600 वें जन्म दिवस महोत्सव के सन्दर्भ में श्री 2500 वाँ भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव न्यास द्वारा आयोजित इस व्याख्यानमाला के आयोजन का स्वागत करते हुए कहा कि सभी क्षेत्रों में जैन समाज का योगदान अनुकरणीय रहता है। इस न्यास ने 2500 वें निर्वाण महोत्सव की स्मृति में ग्वालियर के सबसे बड़े सभागार महावीर भवन और हाईकोर्ट मार्ग पर कीर्ति स्तम्भ का निर्माण कर अनुकरणीय कार्य किया था। भगवान महावीर के 2600 वें जन्म जयन्ती वर्ष के अवसर पर भी जैन समाज ऐसे जो भी स्मरणीय और कल्याणकारी तथा विकासमूलक कार्य करेगा, नगर पालिक निगम उसमें पूर्ण सहयोग करेगा।

व्याख्यानमाला का प्रथम सत्र श्वे. जैन मुनि श्री नेमीचन्द्रविजयजी महाराज के सान्निध्य में तथा स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के रीजनल मेनेजर श्री आजादकुमार जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सत्र के मुख्य वक्ता आचार्य गोपीलाल 'अमर', अनुसंधान अधिकारी - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली ने कहा कि पानी को कितना भी गर्म करें, ताप के समाप्त होते ही वह ठंडा हो जायेगा, इसी प्रकार मनुष्य कितना भी क्रोध करे, हिंसा करे, आवेश के खत्म होते ही वह शांत होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य प्रकृति से अहिंसक और शांतप्रिय है। जिस प्रकार प्रकृति की शुरुआत भी नहीं हुई, वह अनादि है, उसी प्रकार अहिंसा का प्रतिपादक जैन धर्म अनादि है। वह तब से है जबसे मानव है। व्याख्यानमाला के प्रारम्भ में डॉ. अभयप्रकाश जैन और पं. सुमतिचन्द्र जैन शास्त्री ने व्याख्यान दिया। अंत में मुनिजी के प्रवचन सम्पन्न हुए।

द्वितीय सत्र के मुख्य वक्ता कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के निदेशक मण्डल के सदस्य शिक्षाविद् डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, इन्दौर ने भगवान ऋषभदेव के जीवन और दर्शन का विस्तृत विवेचन करते हुए कहा कि उन्होंने भोग भूमि को कर्मभूमि में बदला और असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प, वाणिज्य तथा समाज व्यवस्था और विवाह संस्था को जन्म दिया और अपनी पुत्री ब्राह्मी को लिपिज्ञान और सुन्दरी को गणित की शिक्षा देकर इन विषयों को भी जन्म दिया। साध्वी गुरुछाया (अधिष्ठाता मुनि सुशील आश्रम, नई दिल्ली) ने 'भगवान ऋषभदेव और भारतीय संस्कृति' विषय पर तथा डॉ. कृष्णा जैन ने 'नारी शिक्षा और स्वतंत्रता के जनक भगवान ऋषभदेव' विषय पर व्याख्यान दिया।

सभाओं के प्रारम्भ में न्यास के अध्यक्ष श्री केशरीमल गंगवाल ने अतिथियों एवं विद्वानों का स्वागत किया तथा मंत्री श्री मानिकचन्द्र गंगवाल ने स्वागत भाषण एवं न्यास की गतिविधियों की जानकारी दी। व्याख्यानमाला का विषय प्रवर्तन, संयोजन एवं संचालन श्री रवीन्द्र मालव ने किया। न्यास के उपमंत्री श्री तेजकुमार जैन ने आभार प्रदर्शन किया।

■ **रामजीत जैन, एडवोकेट, ग्वालियर**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयाग में शिक्षामंत्री द्वारा पाठ्यपुस्तकों में संशोधन की घोषणा

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की असीम अनुकम्पा से पाठ्यपुस्तकों में जैनधर्म के विषय में प्रचलित भ्रांतियों का निराकरण प्रयाग - इलाहाबाद में **'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली'** पर आयोजित **'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महाकुम्भ मस्तकाभिषेक'** के अवसर पर **'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव'** के मंच से हो गया। भारत सरकार के केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री मुरलीमनोहरजी जोशी द्वारा 4 फरवरी 2001 को निम्न घोषणा की गई -

'पूज्य माताजी! आपने पाठ्य पुस्तकों के बारे में जो कहा है, ठीक कहा है। मेरे ध्यान में यह बात लाई गई थी और मैंने पुस्तकों को देखा तो उसमें एक जैनधर्म ही नहीं बल्कि अनेक धर्मों के विषय में अनर्गल बातें लिखी गई हैं। हमने आदेश कर दिया है, पुस्तकों का संशोधन हो रहा है और मैंने उनको आदेश दिया है कि किसी भी पुस्तक में ऐसी कोई भी बात नहीं होनी चाहिये जो किसी भी धर्मावलम्बी को चोट पहुँचाये, उसके सिद्धान्तों के विरुद्ध हो। सभी धर्मों के जो वास्तविक अंश हैं, जो उसकी सत्यता है और जिसे उसके धर्माचार्य मानते हैं, प्रमाणित करते हैं कि यह बात ठीक है, उसको आप उसमें शामिल करें और ऐसी बातें जो उस धर्म को मानने वालों में असंतोष पैदा करती हैं, उनके प्रति अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करती हो, उसको सब पुस्तकों से आप निकाल दें। अब एक बार जब पुस्तक चलती है तो तब तक वह बनी रहती है जब तक इम्तहान नहीं हो जाता, क्योंकि वह पाठ्य पुस्तकों में शामिल हो जाती है, लेकिन जो अगले साल से पढ़ाई के लिये पुस्तकें आयेंगी उसमें इस तरह से सुधार होगा कि जब दसवीं या बारहवीं कक्षाओं के इम्तहान हों तो उसमें से वह सब अंश निकले हुए हों। हमने एक और आदेश दिया है कि अगला वर्ष भगवान महावीर के 2600 वें जन्मोत्सव के रूप में मना रहे हैं उसमें जो हमारे केन्द्रीय विद्यालय हैं, C.B.S.E. से सम्बन्धित हैं, उसमें जो जानवरों की चीरफाड़ करके पढ़ाई कराई जाती है, उसे बन्द कर देना चाहिये, इसका भी हमने प्रयत्न किया है। अनेक ऐसे मिट्टी, प्लास्टिक आदि के उपकरण हैं जिनके द्वारा हम उन्हें शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। आशा है कि साल - छः महीने में हम इसे भी पूरा कर देंगे।'

ज्ञातव्य है कि पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म के विषय में प्रचलित भ्रांतियों के निराकरण हेतु एवं जैन धर्म की प्राचीनता के प्रचार - प्रसार हेतु पूज्य माताजी द्वारा सन् 1993 से अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम देश - विदेश में आयोजित किये जाते रहे हैं, उसी श्रृंखला में 4 - 6 अक्टूबर 98 को हस्तिनापुर में भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन आयोजित किया गया तथा 4 फरवरी 2000 को पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किला मैदान से प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी बाजपेयी द्वारा एक वर्ष तक देश - विदेश में मनाये जाने वाले 'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव' का शुभारम्भ किया गया था। एवं अब प्रयाग - इलाहाबाद में 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव एवं महाकुम्भ मस्तकाभिषेक' के विराट आयोजन के साथ समापन समारोह संपन्न हुआ। इस एक वर्ष में विभिन्न स्थानों पर 1008 'ऋषभदेव - महावीर' संगोष्ठियाँ, 108 ऋषभदेव विधान, अन्य लघु एवं वृहद् विधान, ऋषभदेव दशावतार नाटक व अनेक प्रतियोगिताएं आयोजित की गयीं तथा 'ऋषभदेव कीर्तिस्तम्भ' का भी निर्माण किया गया।

■ **ब्र. (कु.) इन्दु जैन**, संघस्थ - भणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर की अहिंसा एवं शाकाहार से ही शांति संभव है

— डॉ. भवालकर

सेन्टर फार एडवांस्ड टेक्नॉलाजी (कैट), इन्दौर के निदेशक विश्वविख्यात लेजर वैज्ञानिक प्रो. डी. डी. भवालकर ने भगवान महावीर के 2600 वें जन्मजयंती वर्ष में जैन युवा परिषद - कैट द्वारा आयोजित आहार - विज्ञान संगोष्ठी (28.4.2001) की अध्यक्षता करते हुए कहा कि 'आज जमीन का बहुभाग एवं पानी पशुआहार के उत्पादन में खर्च हो रहा है और यह पशुआहार मांस के उत्पादन हेतु पशुओं के खिलाने में प्रयुक्त होता है। इस कारण आज विश्व के अनेक भागों में भुखमरी और जलाभाव पैदा हो रहा है। यदि हम सब शाकाहार अपना लें, तो विश्व में मानवता हेतु प्रचुर मात्रा में अन्न एवं जल उपलब्ध हो जायेगा। मांस उत्पादन हेतु जंगल नष्ट किये जा रहे हैं एवं जंगलों का घटता क्षेत्रफल ही पर्यावरण प्रदूषण एवं जलसंकट का कारण है। हम सबको इस पुनीत अवसर पर 6 माह या 1 वर्ष के लिये हमें शाकाहारी बनने का संकल्प लेना चाहिये एवं इस 1 वर्ष के अनुभव के आधार पर भविष्य में अवश्य ही शाकाहारी बन जायेंगे। डॉ. भवालकर ने अपने जीवन के अनुभवों को सुनाते हुए जैन परिषद को ऐसे सुन्दर आयोजन हेतु बधाई दी एवं आशा व्यक्त की कि भविष्य में भी ऐसे सुन्दर आयोजन होते रहेंगे।

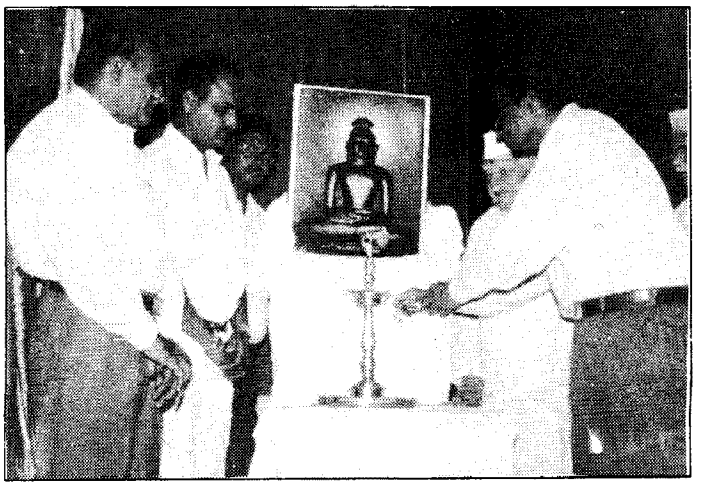

समारोह में दीप प्रज्ज्वलित करते हुए डॉ. भवालकर

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि पद्मश्री बाबूलालजी पाटोदी ने शाकाहार के महत्व पर प्रकाश डालते हुए जीवन में शाकाहार अपनाने की प्रेरणा दी एवं कहा कि देश की अर्थव्यवस्था का विकास शाकाहार के माध्यम से ही संभव है। कार्यक्रम के विशिष्ट वक्ता के रूप में अपने विचार व्यक्त करते हुए भगवान महावीर 2600 वाँ जन्मजयंती महोत्सव प्रान्तीय समिति के संयुक्त महामंत्री एवं गणित के प्राध्यापक डॉ. अनुपम जैन ने भगवान महावीर के जीवन और सिद्धान्तों की चर्चा की। उन्होंने अहिंसा की आधुनिक युग में आवश्यकता, उपादेयता एवं प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला। उन्होंने विश्व की ज्वलंत समस्याओं - पर्यावरण प्रदूषण, आतंकवाद, शोषण, एड्स आदि के समाधान हेतु भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित जीवन शैली को अपनाने पर जोर दिया और कहा कि भगवान महावीर के सिद्धान्तों को अपनाकर ही मानवता इन समस्याओं से मुक्ति पा सकती है। प्रख्यात शाकाहार विद्वान् डॉ. नेमीचन्द जैन ने आहार विज्ञान पर प्रभावी प्रस्तुति दी तथा दि. जैन समाज इन्दौर के महामंत्री इंजी. श्री कैलाश वेद ने 2600 वीं जन्म जयंती मनाने की सार्थकता प्रतिपादित की। कार्यक्रम का संचालन एवं संयोजन युवा सामाजिक कार्यकर्ता श्री निकेतन सेठी ने किया एवं मंगलाचरण श्रीमती वीणा जैन, प्रेमा वेद एवं दिग. जैन महिला संगठन, इन्दौर की बहनों ने किया। इस अवसर पर अ. भा. दि. जैन महिला संगठन की महामंत्री श्रीमती सुमन जैन ने शाकाहार पर एक सुन्दर एवं मनमोहक प्रदर्शनी लगाई जिसकी उपस्थित जनसमुदाय ने भूरि - भूरि प्रशंसा की।

महोत्सव समिति की ओर से डॉ. अनुपम जैन ने कैट के हिन्दी पुस्तकालयय को भगवान महावीर संबंधी साहित्य का एक सेट प्रदान करने की घोषणा की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की कार्यकारिणी की इन्दौर में बैठक

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की कार्यकारिणी की बैठक दिनांक 3 मार्च 2001 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय, इन्दौर में पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई जिसमें डॉ. धर्मचन्द्र जैन - कुरुक्षेत्र (उपाध्यक्ष), डॉ. नलिन के. शास्त्री - बोधगया (उपाध्यक्ष), डॉ. अनुपम जैन - इन्दौर (महामंत्री), डॉ. अभयप्रकाश जैन - ग्वालियर (प्रचारमंत्री), पं. उत्तमचन्द जैन 'राकेश' - ललितपुर, डॉ. संजीव सराफ - सागर ने भाग लिया। विशेष आमंत्रित के रूप में डॉ. प्रकाशचन्द जैन - इन्दौर, पं. जयसेन जैन - इन्दौर एवं श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल - इन्दौर भी उपस्थित थे।

बैठक का एक दृश्य

डॉ. धर्मचन्द्र जैन, कुरुक्षेत्र के मंगलाचरण से बैठक का शुभारंभ हुआ एवं सर्वप्रथम गत बैठक दिनांक 21 मई 2000 की कार्यवाही की पुष्टि की गई। महामंत्री ने वर्ष 2000 - 2001 के आय - व्यय के अब तक के विवरण की प्रस्तुति के साथ ही महासंघ के अब तक बने सदस्यों की सूची प्रस्तुत कर उसकी पुष्टि कराई। डॉ. चन्द्रवीर जैन, शिकोहाबाद के आवेदन पर विचार कर उन्हें सदस्यता प्रदान करने का निर्णय लिया गया।

महासंघ के प्रतीक चिन्ह पर विचार करने की श्रृंखला में श्री आदित्य जैन, लखनऊ द्वारा प्रस्तुत मोनो को उपयुक्त न मानते हुए भगवान ऋषभदेव द्वारा राज्यावस्था में ब्राह्मी और सुन्दरी को पढ़ाने वाले दृश्य को मोनो के रूप में स्वीकार किया गया। इसकी डिजाइन बनाने का काम डॉ. संजीव सराफ, सागर को सौंपा गया।

महासंघ की निबंध प्रतियोगिता के केन्द्रीय संयोजकद्वय डॉ. प्रकाशचन्द जैन एवं पं. जयसेन जैन ने प्रतियोगिता का पूरा विवरण प्रस्तुत किया। तदुपरांत निर्णय किया गया कि राजस्थान और म.प्र. के संयोजकों को स्थानीय स्तर पर पुरस्कार समर्पण समारोह आयोजित करने हेतु अधिकृत किया जाये। एतदर्थ पुरस्कार राशि महासंघ द्वारा निर्वाण महामहोत्सव समिति के माध्यम से प्राप्त कर उपलब्ध कराई जायेगी किन्तु केवल 2 प्रान्तों से प्रविष्ठियाँ आने के कारण केन्द्रीय स्तर पर प्रतियोगिता को निरस्त करने का निश्चय किया गया।

महासंघ द्वारा भगवान ऋषभदेव पर आयोजित संगोष्ठियों का विवरण संकलित करने का दायित्व डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर को सौंपा गया, एतदर्थ होने वाला पोस्टेज का खर्च महामंध द्वारा देय होगा। 'सम्पर्क' डायरेक्ट्री को अद्यतन बनाये रखने तथा पत्राचार एवं कार्यालयीन व्यवस्थाओं हेतु एक सहायक की स्वीकृति प्रदान की गई और इस पर अधिकतम रु. 1,000/- प्रतिमाह खर्च करने की स्वीकृति महामंत्री को प्रदान की गई।

भगवान ऋषभदेव पर एक प्रामाणिक पुस्तक के सृजन का दायित्व डॉ. धर्मचन्द्र जैन, कुरुक्षेत्र को दिया गया। **अध्यक्ष के अनुरोध पर श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल, इन्दौर ने महासंघ का विशिष्ट संरक्षक सदस्य बनना स्वीकार किया, एतदर्थ कार्यकारिणी ने उनके प्रति आभार ज्ञापित किया।** धन्यवाद ज्ञापन के साथ सभा विसर्जित हुई।

■ **डॉ. अनुपम जैन, महामंत्री**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अखिल भारतीय निबन्ध प्रतियोगिता के प्रान्तीय परिणाम घोषित

परम पूज्य, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से मनाये जा रहे भगवान ऋषभदेव अन्तरर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष में तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा **'भगवान ऋषभदेव का भारतीय संस्कृति को योगदान'** विषय पर आयोजित अखिल भारतीय निबंध प्रतियोगिता के दो प्रान्तों के परिणाम घोषित किये गये हैं -

1 - **मध्यप्रदेश** - प्रदेश में कुल 69 निबंध प्राप्त हुए। इनके परीक्षण हेतु प्रांतीय संयोजक द्वारा गठित त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल से प्राप्त अंकों के आधार पर मध्यप्रदेश की प्रांतीय संयोजक डॉ. (श्रीमती) वन्दना जैन, सहायक प्राध्यापक - हिन्दी विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर - मालवा (जिला शाजापुर) द्वारा प्रेषित परिणाम निम्नानुसार है -

प्रथम पुरस्कार - I. **कु. आभा जैन**, एम.ए. (पूर्वार्द्ध), महाराजा कालेज, छतरपुर।
II. **श्री सत्यम श्रीवास्तव**, बी.ए. (द्वितीय वर्ष), महाराजा कालेज, छतरपुर।

द्वितीय पुरस्कार - I. **श्री हेमन्त बिलैया**, कक्षा 12वीं (जीव विज्ञान), शासकीय उ.मा. विद्यालय क्रमांक 1, छतरपुर।
II. **श्री अनूप तिवारी**, कक्षा 12वीं (गणित समूह), शासकीय उ.मा. विद्यालय क्रमांक 1, छतरपुर।

तृतीय पुरस्कार - I. **कु. श्वेता रानी जैन**, कक्षा 12वीं, शासकीय कन्या उ.मा. विद्यालय, आगर - मालवा (जिला शाजापुर)।
II. **कु. ऋचा जैन**, कक्षा 6ठी. श्री महावीर बाल संस्कार केन्द्र, बड़ा मल्हरा (जिला छतरपुर)।

2 - **राजस्थान** - प्रदेश में कुल 43 निबंध प्राप्त हुए। इनके परीक्षण हेतु प्रांतीय संयोजक द्वारा गठित त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल से प्राप्त अंकों के आधार पर राजस्थान के प्रांतीय संयोजक डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन, संस्कृताध्यापक, श्री महावीर उ.मा. विद्यालय, लाड़नूँ (जिला नागौर) द्वारा प्रेषित परिणाम निम्नानुसार है -

प्रथम पुरस्कार - **कुमार अनेकान्त जैन**, शोध छात्र, जैन विश्वभारती, लाड़नूँ।

द्वितीय पुरस्कार - **कु. मेरी जैन**, सरावगी मोहल्ला, लाड़नूँ।

तृतीय पुरस्कार - **कु. शालू जैन**, नया बास (घोडेला मार्ग), सुजानगढ़ (जिला चुरु)।

3 - **दक्षिण भारत** - दक्षिण भारत से प्राप्त निबंधों का मूल्यांकन केन्द्रीय संयोजक श्री जयसेन जैन, सम्पादक - सन्मति वाणी द्वारा किया गया। कम प्रविष्टियाँ आने के कारण मात्र एक सांत्वना पुरस्कार ही घोषित किया गया। तदनुसार प्रदत्त निर्णय निम्नानुसार है -

विशेष सांत्वना पुरस्कार - श्री प्रवीणकुमार जैन, बी.ई. (द्वितीय वर्ष), 120 जैन स्ट्रीट, पेरिया कोराटई विल, किलनमंडी पोस्ट, वन्दावासी तालुका, टी.वी. हलाल डिस्ट्रिक्ट, तमिलनाडु - 604 501.

उक्त घोषित प्रतियोगियों को 8 जुलाई 2001 को अशोक विहार फेज - I, दिल्ली में पुरस्कार समर्पण समारोह आयोजित कर पुरस्कृत किया जायेगा। साथ ही उन समस्त प्रतियोगियों को भी सांत्वना पुरस्कार के रूप में कुछ उपयोगी साहित्य प्रेषित किया जायेगा जिन्होंने इस प्रतियोगिता में भाग लेकर निर्धारित समयावधि में अपने निबंध प्रांतीय संयोजकों को प्रेषित किये हैं।

केवल 2 प्रान्तों से ही निर्धारित संख्या में प्रविष्टियाँ प्राप्त होने के कारण केन्द्रीय स्तर पर होने वाली प्रतियोगिता निरस्त कर दी गई।

■ **डॉ. अनुपम जैन, महामंत्री - विद्वत् महासंघ**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यत् महासंघ पुरस्कारों की घोषणा

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की कार्यकारिणी की बैठक के निर्णयानुसार वर्ष 2000 के विद्वत् महासंघ पुरस्कारों की निम्नवत् घोषणा की गई है -

1. **सौ. चन्दारानी स्मृति विद्वत् महासंघ पुरस्कार** (रु. 11,000/- एवं प्रशस्ति पत्र) - **श्रीमती सुमन जैन**, सम्पादिका - ऋषभ देशना, इन्दौर को।

2. **सौ. रूपाबाई विद्वत महासंघ पुरस्कार** (रु. 11,000/- एवं प्रशस्ति पत्र) - **डॉ. संजीव सराफ**, पुस्तकालयाध्यक्ष, सागर एवं **प्रो. के. के. जैन**, सहा.प्राध्यापक - राजनीति शास्त्र, बीना को संयुक्त रूप से।

3. **भगवान ऋषभदेव विद्वत् महासंघ पुरस्कार** (केवल निर्वाण महामहोत्सव वर्ष हेतु - पं. शिवचरनलाल जैन के सौजन्य से) (रु. 5,000/- एवं प्रशस्ति पत्र) - **डॉ. रमा जैन**, पूर्व प्राध्यापक - हिन्दी, छतरपुर को।

पुरस्कार समर्पण समारोह 8 जुलाई 2001 को अशोक विहार फेज-I, दिल्ली में आयोजित किया जायेगा। समस्त पुरस्कृत विद्वानों/विदुषियों को हार्दिक बधाई।

■ **डॉ. अनुपम जैन, महामंत्री**

26 जैन बन्धुओं को प्रधानमंत्री द्वारा जैनरत्न सम्मान प्रदत्त

भगवान महावीर के 2600 वें जन्म जयंती वर्ष के सन्दर्भ में 8 अप्रैल 2001 को मुम्बई के सम्मुखानन्द सरस्वती आडिटोरियम में भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री अटलबिहारी बाजपेयी जी के मुख्य आतिथ्य तथा महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री पी. सी. अलेक्जेन्डर की अध्यक्षता में आयोजित भव्य समारोह में देश-विदेश में रचनात्मक कार्य करने वाले 26 जैन बन्धुओं को **'जैन रत्न'** सम्मान से विभूषित किया गया। सम्मानित महानुभावों में वाणीभूषण पं. ज्ञानचन्दजी स्वतंत्र (विदिशा), श्रीमती इन्दु जैन (दिल्ली), श्री बसंत एम. दोशी (मुम्बई), श्री रवीन्द्र जैन संगीतकार (मुम्बई), श्री अभयकुमार कासलीवाल (मुम्बई), श्री माणकचन्द जैन (कोल्हापुर), श्री धीरज शाह (अमेरिका), श्री सुरेन्द्र मेहता (चेन्नई), श्री आर. सी. बाफना (जलगाँव) के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रीमती आनन्दमती जैन स्मृति पारमार्थिक न्यास का गठन

प्रसिद्ध समाजसेवी एवं देव - शास्त्र - गुरु के अनन्य भक्त श्री अनिलकुमार जैन 'कागजी' की पूज्य मातेश्वरी 83 वर्षीय श्रीमती आनन्दमती जैन का अत्यन्त शांत एवं धार्मिक परिणामों के मध्य शुक्रवार दि. 11 मई 2001 को मध्यान्ह 1 बजे दिल्ली में निधन हो गया। स्वर्गीय श्री सुलेकचन्द जैन (छपरौली वाले) की धर्मपत्नी श्रीमती जैन अत्यन्त धार्मिक परिणामों वाली सहृदय महिला थीं। आपकी स्मृति में पुत्र श्री अनिलकुमारजी जैन 'कागजी' एवं पुत्रवधू श्रीमती अनिता जैन ने रु. 1,00,000.00 के प्रारम्भिक अंशदान से **श्रीमती आनन्दमती जैन स्मृति पारमार्थिक न्यास (चेरिटेबल ट्रस्ट)** के गठन की घोषणा की है। इस न्यास के माध्यम से गरीब एवं निर्धन महिलाओं को आर्थिक सहयोग एवं निर्धन किन्तु मेधावी छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायेंगी। इसके साथ ही सामाजिक उत्थान के अन्य कार्य भी सम्पन्न होंगे। समय-समय पर इस न्यास में अन्य अंशदान भी आपके परिवार से प्रदान किये जायेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विद्या संगोष्ठी की एक झलक

ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित जैन विद्या संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में आशीर्वाद प्रदान करते हुए बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी महाराज

संगोष्ठी का दीप प्रज्ज्वलित कर शुभारम्भ करते हुए संयोजक पं. जयसेन जैन, विशेष अतिथि डॉ. दिलीप बोबरा (अमेरिका), संस्थाध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, मुख्य अतिथि प्रो. पी.एन. मिश्र (निदेशक - प्रबन्ध अध्ययन संस्थान) एवं सत्र के अध्यक्ष श्री सूरजमल बोबरा

संगोष्ठी के एक सत्र को सम्बोधित करते हुए डॉ. महेन्द्र पांड्या (अध्यक्ष JAINA अमेरिका)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

I.S.S.N. 0971 - 9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार - पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199 / 88

स्वामी श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स,** सिटी प्लाजा, म.गा. मार्ग, इन्दौर फोन : 538283 द्वारा मुद्रित। मानद सम्पादक - **डॉ. अनुपम जैन**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org